फूलोंका गुच्छा।

सम्पादक—

नाथूराम प्रेमी।

हिंदी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजका चौथा ग्रन्थ ।

फूलोंका गुच्छा ।

११ सुन्दर, भावपूर्ण और मनोरंजक गल्पोंका संग्रह ।

सम्पादक—

नाथूराम प्रेमी ।

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई ।

भाद्र, १९७५ वि० ।

सितम्बर १९१८.

तृतीयावृत्ति ।] [मूल्य नौ आने ।

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

मुद्रक—

मंगेशराव नारायण कुळकर्णी,

कर्नाटक प्रेस,

नं० ४३४, ठाकुरद्वार, बम्बई।

निवेदन।

इस पुष्पगुच्छमें सौन्दर्य है, माधुर्य है, कोमलता है और सुरभि भी है। इससे आशा है कि हिन्दीके रसिक एक नई वस्तु समझकर इसका आदर करेंगे और इसे अपने स्वाध्यायकी मेज-पर स्थान देनेकी कृपा दिखलावेंगे।

इस संग्रहमें ११ कहानियाँ हैं। इनमेंसे दोको छोड़कर शेष सब बंगलाभाषासे अनुवादित हैं,—'वीर-परीक्षा' गुजरातीसे और 'शिष्य-परीक्षा' मराठीसे ली गई है। प्रायः इन सब ही कहानि-योंके मूल लेखक अपने अपने साहित्यके ख्यातनामा लेखक हैं।

इस संग्रहकी ६ कहानियाँ 'जैनहितैषी' में प्रकाशित हो चुकी हैं और उनमेंसे कञ्चुका, जयमाला तथा ऋणशोध ये तीन मेरे प्रिय मित्र पं० शिवसहाय चौबेकी अनुवाद की हुई हैं।

सम्पादक।

सूची।

		पृष्ठसंख्या।
१	अपराजिता	१
२	कञ्चुका	२१
३	जयमाला	२६
४	मधुस्रवा	३१
५	विचित्र स्वयंवर	३५
६	वीर-परीक्षा	५४
७	जयमती	६४
८	ऋणशोध	६९
९	चपला	७९
१०	कुणाल	९१
११	शिष्य-परीक्षा	९६

फूलोंका गुच्छा ।

अपराजिता ।

(१)

कुछ दिनोंसे काशीराजके अन्तःपुरके उद्यानमें एक नवीन माली आया है। वह अपना नाम वसन्त बतलाता है । वह रूप और गुणोंमें ऋतुराज वसन्तसे किसी प्रकार कम नहीं ।

एक दिन वसन्तऋतुके प्रभातमें जब एक बे-जानपहिचानका तरुण पुरुष राजसभामें नौकरीकी इच्छासे आकर खड़ा हुआ, तब उसे देखकर सभासदोंका ईर्षाकुटिल मन प्रीतिरससे अभिषिक्त हो गया, वृद्ध मंत्रीका संदिग्ध पर गंभीर चित्त स्नेहस्पर्शसे चंचल हो उठा, राजाके नेत्र प्रशंसापुलकसे विस्फारित हो गये और राजसभाकी एक ओर चमकीली चिकोंकी आड़में बैठी हुई युवतियोंके चंचल चक्षु स्थिर हो रहे ।

राजाने उसे आदरपूर्वक सभामें बिठाकर पूछा—हे युवक, तुम कौन हो ? तुमने किस देशके किस परिवारको अपने जन्मसे सुखी किया है ? तुम्हारा शरीर कुसुमके समान सुकुमार और सुन्दर है, तुम क्या काम करोगे ? तुम्हें कोई भी काम न करना होगा, तुम हमारी राजसभाको ही निरंतर आनन्दित किया करो ।

वसन्तने मूर्तिमान् विनयके समान मस्तक नवाकर धीरता और दृढ़तासे कहा—महाराज, जिस पुरुषको कोई काम नहीं, उसके क्लेशका कोई ठिकाना नहीं । कृपा करके उस क्लेशसे आप मेरी रक्षा करें—मेरी सामान्य शक्तिको आप अपनी ही किसी सेवामें लगावें ।

राजाने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा युवक, कहो तुम्हें कौनसा काम अच्छा लगता है ? मंत्री, सेनापति, सभाकवि आदि जो कोई तुम सरीखा सहकारी पायगा सुखी होगा । बतलाओ, तुम्हें कौनसा काम पसन्द है ?

वसन्तने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, मैं असमर्थ हूं । किसी बड़े कार्यके भारको नहीं उठा सकूंगा । मेरी इच्छा है कि मैं महाराजके खास

और उज्ज्वल नेत्रोंकी तरल दृष्टिमें भक्तिभाव भरकर वसन्तके रूपकी पूजा करनेके लिए ।

यद्यपि उस रूपहीना, संकुचिता और शब्द-शक्तिविरहितापर दृष्टि डालनेको वसन्तको अवकाश न था, तो भी वह उसकी दृष्टिमें इसलिए पड़ गई थी कि वह अन्य सब युवतियोंके साथ अपने जीवनके तारको न बजा सकती थी । अर्थात् उसकी यह विषमता ही वसन्तके दृष्टिनिक्षेपका कारण थी । अन्यथा वसन्त अपने रूपके प्यासे नेत्रोंको उसपर क्यों डालता ? उस समय उसके यौवनका तप्त रक्त रूपके नशेमें चूर हो रहा था ।

रूपहीनाको उस रूपकी हाटसे निकाल देनेका उपाय न था, इसलिए वसन्त केवल सभ्यताके नियमका पालन करनेके खयालसे अन्य राजकुमारियोंके लिए माला गूंथ कर उनसे बचे हुए जैसे तैसे गंधहीन फूलोंकी एक माला बना रखता था और उसे यमुनाको इस तरह अवहेलनाके साथ देता था जैसे राजाओंके द्वारपर भिखारीको भिक्षा दी जाती है । परन्तु यमुना उस मालाको देवताके प्रसादके समान बड़ी श्रद्धाके साथ अपने गलेमें पहन लेती थी । जिस दिन कुमारी इन्दिरा एक विशेष प्रकारकी ग्रीवाभंगी करके लीलायुक्त कटाक्षसे मुसकुरा जाती थी, कुमारी शुक्ला जाते जाते एक आध बार दयापूर्वक लौटकर देख लेती थी और कुमारी आनन्दिता प्राणोंको उन्मत्त कर देनेवाला मधुर परिहास कर जाती थी; उस दिन वसन्त यमुनाके लिए भी गंधहीन और काले रंगके अपराजिता नामक फूलोंकी एक माला बना देता था । वसन्तका यह अपूर्व प्रसाद पाकर यमुनाका मन आनन्द और कृतज्ञतासे इतना भर जाता था कि उसमें उसे अपनी लज्जाको भी रखनेका स्थान न रहता था ।

वसन्तका बगीचा घरके फूलोंसे और वनके फूलोंसे शोभित रहता था, चन्द्रमाकी चांदनी और रूपकी चांदनीसे प्लावित रहता था, पक्षियोंके कलकूजनसे और युवतियोंके कलहास्यकौतुकसे ध्वनित रहता था, फब्बारोंकी अजस्र धाराओंसे और हृदयकी अजस्र प्रीतिसे सींचा जाता था और मणिदीपोंके प्रकाशसे तथा बड़ी बड़ी आंखोंकी चितवनसे उज्ज्वल रहता था । दिनके बाद दिन, रातके बाद रात, सवेरेके बाद संध्या और संध्याके बाद सवेरा इस प्रकार धीरे धीरे एक सुखके सोतेके समान समय बहा चला जाता था । इसमें वह युवतियोंका झुंड वसन्तको घेरे हुए आनन्दमग्न और प्रणयोन्मत्त

रहता था। वसन्त कुसुमके फूलोंके गाढ़े रंगसे उनकी ओढ़नी रँग देता था; रुखमंडलीके फूलोंको मसलकर चरण रँग देता था–मेंहदीके पत्तोंके रससे हाथ रँग देता था और मधुर हास्य, प्रिय वचन, तथा चाहभरी चितवनसे उनके हृदयको रँगनेकी चेष्टा करता था। उन सुन्दरियोंका हृदय उससे रँगता था कि नहीं, कौन जाने; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन युवतियोंके अफीमके फूलके समान लाल, और मादक ओंठ, अनारके फूलसदृश गाल, कुसुमरंगके वस्त्र, और मेंहदीरंजित चरण अपनी सारी लालिमा एकत्र करके वसन्तके कोमल हृदयको रुधिरके रंगसे रँग देते थे। तरुणियां वसन्तसे जितनी अन्तरंगता बढ़ाती थीं, वसन्त अपने अन्तरके मध्यमें उतनी ही शून्यता अनुभव करता था और धीरे धीरे उस सारी शून्यताको पूर्ण करके वह किसी एकको अपने जीवनमन्दिरमें आह्वान करनेके लिए अधीर हो जाता था।

(२)

एक दिन जब संध्याके समय प्रत्येक वृक्षपर फूलोंके चँदोवे तन रहे थे, दक्षिण-वायु विरह-मूर्च्छितोंकी निःश्वासके समान रह रह कर फूलोंके वनमें कँपकँपी उत्पन्न करती थी, फूलोंकी गंधसे मत्त होकर कोकिल और पपीहा प्रलाप करते थे और हजारों दीपोंकी शिखाओंके बीच फब्बारोंका जल हीरेकी मालाओंके समान पड़ता था, तब वसन्तके प्रेमसंगीतको बन्द करके राजकुमारी इन्दिरा साक्षात् लक्ष्मीके समान उसकी झोपड़ीके द्वारपर आकर खड़ी हुई। वसन्त तत्काल उठ खड़ा हुआ और फूलोंसे भरे हुए एक दौनेको उसके चरणोंके आगे औंधाकर बोला—इन्दिरा, तुम बाहरके फूलोंको तो नित्य ले जाती हो, मेरे अन्तरका अतुलनीय फूल क्या तुम्हारे चरणोंमें स्थान नहीं पायगा? और यह फूलोंका वन विवाहोत्सवसे क्या और विशेषरूपसे प्रफुल्लित नहीं होगा?

कुमारी इन्दिरा भौंहें चढ़ाकर और फूलोंको घृणापूर्वक पैरोंसे कुचलकर बिजलीके समान कड़ककर बोली—एक नीच मालीका इतना बड़ा साहस! क्यों रे, अनुग्रहको तू प्रणय समझता है? तुझे एक राजकन्याको अपनी झोपड़ीमें रखनेका शौक चर्राया है! क्या तू नहीं जानता है कि मेरे पाणिग्रहणके लिए कर्नाटकनरेश जैसे महाराजा याचक हुए हैं? तेरा यह सब

साहस कल उस समय नष्ट होगा, जब राजाकी आज्ञासे तू शूलीपर चढ़ाया जायगा !

वसन्तके हृदयमें इससे जो अपमानजन्य वेदना हुई, वह शूलके आघातसे किसी प्रकार कम न थी। जिस इन्दिराके श्रीचरणोंमें वह अपने हृदय-भांडारके श्रेष्ठसे श्रेष्ठ बहुमूल्य अर्घ्य एकके बाद एक अर्पण करके खाली हो गया था, आज उसीने उसे तुच्छसे तुच्छ समझकर पैरोंसे ठुकरा दिया! संसारमें क्या प्रेम और भक्तिका बदला इसी प्रकार दिया जाता है?

वसन्तने इन्दिराके पैरोंमें पड़कर कहा—शूलीपर चढ़ाना हो, तो चढ़वा देना, मैं रोकता नहीं हूं; परन्तु राजकुमारी, विचारके देखो, बाहरसे दीन होकर भी मैं अन्तरमें दीन नहीं हूं। जो ऐश्वर्य मैंने तुम्हारे चरणोंपर निछावर कर दिया है, उसे तुम किसी महाराजके भांडारमें भी खोजनेसे नहीं पाओगी। कंगालको सब प्रकारसे कंगाल करके मत मारो!

इन्दिरा हँस पड़ी। उसका वह उपहास करोंतके समान कर-कर करता हुआ वसन्तके हृदयको इस पारसे उस पार तक चीर कर चला गया।

वसन्तने विनतीके स्वरसे कहा—मेरी इतने दिनोंकी व्यर्थ पूजाके उपहारस्वरूप मेरा एक अन्तिम अनुरोध मान लो, तो अच्छा हो। कल सबेरेसे पहले यह बात तुम किसीके आगे प्रकाशित नहीं करना। मैं एक बार कुमारी शुक्ला और आनंदिताके साथ और भी अपने भाग्यकी परीक्षा करना चाहता हूं।

इन्दिराने गर्वसे कहा—अच्छा तुम्हारी प्रार्थना मंजूर है। मैं स्वयं ही उन्हें बुलाये देती हूं। पर मैं यह भी कह देती हूं कि तुम्हारी यह केवल दुराशा है। विश्वास रक्खो, कोई भी राजकुमारी मालीके गलेमें प्रणयकी माला नहीं डालेगी और तो क्या काली यमुना भी नहीं डालेगी! माली चाहे जितना सुन्दर और मनोहर क्यों न हो राजकुमारियां उसे अपना प्रणयी नहीं बना सकतीं।

इन्दिराने जाकर शुक्लाको भेज दिया। शुक्ला भी उसी प्रकारसे वसन्तके प्रणयनिवेदनका तिरस्कार करके लौट आई। उसके पीछे आनन्दिता गई और वह भी व्यथित मालीको ज्वालामय शब्दोंसे और भी दुखी करके

चली आई। आनन्दिताने यमुनासे हँसकर कहा— अरी यमुना, जा तुझे वसन्त बुलाता है।

वसन्त बुलाता है? मुझे? आनन्दसे, उल्लाससे, लज्जासे, संकोचसे, आशासे और आशंकासे यमुनाका हृदय धकधक करने लगा। वह अपनी बहिनोंकी ओर न देख सकी। उसने उनके क्रूर परिहास पर ध्यान न दिया। वह तीर्थयात्री भक्तके समान परम आनन्दसे, प्रथममिलन-भीता नवोढ़ाके समान कम्पित हृदयसे, लज्जासे, और संकोचसे धीरे धीरे जाकर वसन्तके सम्मुख चुपचाप मस्तक झुकाये जा खड़ी हुई। वसन्त उस समय जमीनपर पड़ा हुआ रो रहा था। उसने यमुनाकी ओर देखा भी नहीं।

वसन्तको रोते देखकर यमुनाका हृदय फटने लगा। वह नहीं समझ सकी कि मेरी निर्मोहिनी बहिनें वसन्तको कौनसी दारुण व्यथा दे गई हैं। यमुना अपने उस व्यथित बन्धुकी ओर सजल और दयापूर्ण दृष्टिसे देखते देखते कांपते हुए कंठसे सान्त्वना देनेके लिए बोली—वसन्त!

वसन्त उच्छ्वसित गर्जनसे बोला—दूर हो, जा जल्लादको बुला ला! वह मुझे अभी शूलीपर चढ़ा दे!

लज्जिता, व्यथिता और मितभाषिणी यमुना सजल नेत्रोंसे अपनी व्यर्थ सान्त्वनाको लेकर वहांसे धीरे धीरे चली गई। उसे वसन्तकी वेदना वसन्तसे भी द्विगुणित व्यथित करने लगी। यदि वह अपनी सारी शक्तिके, सारी शान्तिके, सारे भाग्यके और सारे सुखके बदले संसारको छानकर वसन्तको सान्त्वना दे सकती, तो देनेको तैयार थी; परन्तु उसका कहीं सम्मान न था। वह कुरूपा थी। अपनी असमर्थतासे वह आप ही पीड़ित होने लगी।

सुन्दरी कुमारियोंने हँसकर पूछा—क्योंरी यमुना, मालीने तुझसे क्या कहा?

इस बातका उत्तर वह रूपहीना क्या दे सकती थी! उसने नीचेको सिर किये हुए केवल यह कहा कि—कुछ नहीं।

सुन्दरियां अपने अट्टहाससे वृक्षोंपरके पक्षियोंको भयभीत करती हुई बोलीं—वाह रे शौकीन माली, तुझे काली कुरूपा पसन्द न आई! यमुना, इस बातका विचार करनेसे भी हमको लज्जा आती है कि तू हमारी बहिन है

और सामान्य माली भी तुझसे घृणा करता है। हमारे पीछे पीछे छायाके समान लगे रहनेसे तुझे लज्जा नहीं आती?

इस अपमानने यमुनाको स्पर्श भी न किया। क्योंकि यह तो उसको प्रतिदिन मिलनेवाला पदार्थ था--उसका आभरण था; किन्तु उसकी बहिनें जो वसन्तके दुःखमें हँसती थीं और उसको जिस पीड़ाके देनेका परामर्श करती थीं, उससे यमुनाके हृदयमें हजारों कांटोंके छिदनेके समान पीड़ा होने लगी। वह उनके अमानुषिक आनन्दको देखकर जीते रहनेकी अपेक्षा अपना मर जाना बहुत अच्छा समझती थी। यमुना यदि अपने श्रोणिताश्रुओंसे भीगे हुए हृदयसे ढँककर वसन्तको इस महती निष्ठुरतासे बचा सकती, तो बचा लेती; परन्तु क्या करे, बेचारी असमर्थ थी।

उस पुष्पवनकी मन्द मन्द पवनसे भी यमुनाके हृदयसरोवरमें आज जो ऊंची ऊंची लहरें उठती थीं, वे बड़ी ही दुःखमयी थीं। आज इस बगीचेके जीवनस्वरूप मालीकी वेदना देखकर फूलोंका विकसित होना, पक्षियोंका कलरव करना, भ्रमरोंका गुंजन करना, चांदनीका खिलना और पवनका पत्ते पत्तेके साथ अठखेलियां करना उसे बड़ा बुरा मालूम होता था। यमुना बगीचेके इस निष्ठुर और निर्लज्ज व्यवहारको यदि अंधकारका काला पर्दा डाल कर ढँक सकती, तो अवश्य ढँक देती। उसे ऐसा भास होता था कि यह सारा बगीचा मेरी बहिनोंके षड्यंत्रमें शामिल होकर वसन्तकी वेदनासे आनन्दित हो रहा है। आज यमुनाकी लज्जा उसीके वेदनाहत हृदयमें तीक्ष्ण छुरीके समान लगती थी।

(४)

दूसरे दिन सबेरे राजकुमारियोंने राजाके निकट जाकर वसन्तकी अवज्ञाका—गुस्ताखीका—वर्णन किया और निवेदन किया कि इस असभ्य मालीको शूलीपर चढ़ाना चाहिए। राजकुमारियोंने बहुत दिनोंसे नरहत्याका दृश्य न देखा था।

राजाकी आज्ञासे वसन्त राजसभामें कैद करके लाया गया। उसने बिना किसी प्रकारकी आनाकानी किये अपना अपराध स्वीकार कर लिया। यदि वह झूठ बोलकर भी अपराध अस्वीकार करता, तो राजसभा सुखी होती; परन्तु नहीं, वसन्त अपने उस निराशाके जीवनसे मरना अच्छा समझता था—इसलिए उसने किसी भी तरहसे अपने अपराधको अस्वीकार न किया।

वसन्तको देखकर कठोर कवचको धारण करनेवाले पहरेदारके भी नेत्रोंमें आंसू आ गये। वाह! कैसा सुकुमार रूप है! इस कोमल और मधुरस्वभावी वसन्तको क्या शूलीपर चढ़कर प्राण देने होंगे?

राजाने राजकन्याओंसे अनुनयके स्वरमें कहा—बेटियो, यह तो पागल है। इसको न हो, तो राजधानीसे निकलवा दो! बस, इतनेहीसे सब बखेड़ा मिट जायगा।

परन्तु राजकुमारियां अपनी प्रतिज्ञासे न हटीं। सेवकके रक्तसे वे अपने नेत्रोंमें आनन्दका अंजन अवश्य लगावेंगी। उसके हृदयको दलित करके वे अपने पैरोंको रँगे बिना न मानेंगी।

अन्तमें राजाने बड़े कष्टसे आज्ञा दी कि वसन्त जीवन भर कैदमें रक्खा जाय।

कुमारियोंने कहा—अच्छा, यदि कैदहीकी आज्ञा है, तो यह अन्तःपुरके कारागारमें रक्खा जाय। वहां रखनेसे इसके कारण हमारा कुछ समय आनन्दसे कटेगा।

राजाने कहा—तथास्तु।

अन्तःपुरकी दयामयी देवियोंका जिनपर कोप होता था, उन अभागियोंके लिए अन्तःपुरमें एक अन्ध-कारागार बनाया गया था। यह कारागृह अपने लोहकपाटरूपी दन्त मिलाकर जिसे ग्रास बनाता था, उसे जीर्ण या सत्त्वहीन किये बिना बाहर न निकालता था। इन कपाटोंमें कहीं थोड़ीसी भी संधि न थी, जिसमेंसे बाहरका थोड़ा बहुत प्रकाश भीतर भूलसे भी आ जाय। केवल थोड़ीसी हवा आनेके लिए दीवाल और छतकी जोड़में दो चार छोटे छोटे छिद्र थे और भोजन देनेके लिए एक पात्रके जाने योग्य छोटासा ताक था। मरण जल्दी न हो जाय, इसके लिए यह थोड़ासा सुभीता था, रोगीको आराम देनेके लिए नहीं। दयामयी देवियोंकी आज्ञा थी कि प्रकाश, हवा और भोजन जितना जा सके, इन सब द्वारोंसे बेखटके चला जाय; परन्तु आज्ञा होनेपर भी उक्त द्वारोंसे प्रकाश और हवा असंकोच भावसे नहीं जा सकती थी। क्योंकि जिस स्थानमें छिद्र थे, उसके आगे एक और पत्थरकी ऊंची दीवाल खड़ी थी और जो भोजन देनेका द्वार था, उसमें एक साधारण कटोरेसे बड़ी कोई चीज न जा सकती थी। इसके भीतर जो अभागी पहुँच जाता था, उसे धैर्यके साथ मरनेकी प्रतीक्षा

करते रहनेके सिवा और कोई शांतिका उपाय न था। खानेको देनेका द्वार इतनी ऊंचाईपर था कि उसमेंसे बाहरका मनुष्य भीतर और भीतरका मनुष्य बाहर न देख सकता था। केवल हाथ डालकर भोजन देना और लेना बन सकता था। भोजनका पात्र खाली करके ताखके ऊपर रख देनेकी व्यवस्था थी। जिस दिन पात्र खाली न होता था, उस दिन समझ लिया जाता था कि कैदी पीडित है और सात दिन बराबर इसी तरह पात्र खाली न होनेसे विश्वास कर लिया जाता था कि कैदी भवयंत्रणासे मुक्त हो चुका है।

वसन्त इसी भीषण कारागारमें रक्खा गया। उसकी सारी आशा आकांक्षा-ओंकी जननी पृथ्वी, उसके प्रेमके स्थान सारे सुन्दर मुख और उसके चन्द्र, सूर्य, प्रकाश, आकाश, पुष्प, पवन आदि संपूर्ण प्यारे पदार्थ सदाके लिए लोह-कपाटोंकी आड़में लुप्त हो गये। बाहरका हर्ष-कोलाहल अवश्य ही उसके कानों-तक पहुँचता था; परंतु उसकी ओर उसका ध्यान ही न रहता था। वह अपने निष्फल प्रणयके शोकमें इस प्रकार मग्न रहता था कि उसका उक्त कोलाहलकी ओर लक्ष्य ही न जाता था।

सुन्दरी राजकुमारियां कारागारके समीप आकर ताखके पाससे हँस-हँसकर कहती थीं,—क्यों जी वरमहाराज, ससुरालमें आज कैसा आनंद आ रहा है! रसिक मालाकार, हम तुम्हारे लिए वरमाला लेकर आई हैं, लो इसे ग्रहण करो! इसके पश्चात् वे कांटोंकी मालाको वसन्तके आगे फेंककर खूब खिलखिलाकर हँसती थीं। उनकी वह कांटोंसे भी अधिक तीखी और निष्ठुर हँसी उनके पीछे रहनेवाली यमुनाके हृदयमें शूलसी चुभती थी।

परन्तु राजकुमारियोंका यह दुर्व्यवहार वसन्तको अधिक पीड़ा न दे सकता था। क्योंकि उनका प्रथम व्यवहार ही ऐसा मर्मभेदी हुआ था कि उसके पीछे-की इस नूतन वेदनाका उसे अनुभव ही न होता था।

वसन्त बहुत कुछ विनय अनुनय करके कारागारमें अपनी वीणाको भी ले आया था। अंधकारमें बैठकर जब वह अपनी उस एक मात्र प्रण-यिनीको हृदयसे लगाकर उसके प्रत्येक तारसे अपनी हार्दिक वेदना व्यक्त करता था, तब सारी राजपुरी विषादसागरमें मग्न हो जाती थी। उस

राजमहलमें एक राजकुमारियां ही ऐसी थीं, जो उस समय हँसहँसकरके कहती थीं कि—देखो, वर महाराज आज ससुरालमें गाना गा रहे हैं !

राजकुमारियोंका आनन्द और उत्साह दो ही दिनमें थक गया। वसन्तके साथ एक ही प्रकारके आमोद-प्रमोदसे अब उनका जी ऊब उठा। अब उन्होंने नूतन अमोदका अनुसंधान करनेके लिए कर्नाटक कलिंगादि देशोंके राजाओंकी ओर अपने चित्तकी वृत्तिको बदला।

(५)

अब राजकुमारियोंके न आनेसे वसन्त अपने जीवनके चारों ओर कुछ प्रसन्नताका अनुभव करने लगा। उसने देखा कि राजकुमारियां तो अब नहीं आती हैं; परंतु उसके भोजनका पात्र दोनों वक्त नियमित रूपसे ताखमें आकर उपस्थित हो जाता है। जो उसके लिए आहार लाती है, उसके हाथ सुकुमार तथा कोमल हैं—वह कोई करुणामयी रमणी है। वह अब एक कटोरा भर सत्तू लाती है और गुलाबजल तथा दूधमें साने हुए उस सत्तूके नीचे नाना प्रकारके व्यंजन छुपे रहते हैं। कटोरा एक सुगन्धित फूलोंकी मालासे लिपटा हुआ रहता है। इससे वसन्तने समझा कि इस पाषाणहृदय राजमहलके भीतर भी एक आध कोमल हृदय व्यक्ति है। उसके हृदयमें प्रश्न उठने लगा कि यह करुणामयी कौन है?

क्रमक्रमसे वसन्तका हृदय इस करुणामयी सेविकाकी ओर आकर्षित होने लगा। वसन्त भोजन आनेके द्वारकी ओर टक लगाये रहता था कि कब उस करुणामयीके कोमल हाथ भोजनपात्रको रखनेके लिए आते हैं। देखते देखते वसन्तको उन हाथोंके दर्शन करनेका समय एक प्रकारसे निश्चित हो गया। जिस समय ताखके मुखपर दीवालकी छाया कुछ फीकी पड़ती थी, घरका अन्धकार कुछ कम होता था और हवा आनेके छिद्रोंसे जब सूर्यकी थोड़ीसी किरणें भीतर आतीं थीं, उसी समय उस करुणा-मूर्तिका आविर्भाव होता था। उस समय बाहरकी हवाकी सरसराहट, पत्तोंकी खरखराहट और आने जानेवालोंके पैरोंकी आहट वसन्तको क्षणक्षणमें आतुर करती थी। उस समय वह अपने सारे मनोयोगका केन्द्र कानों और नेत्रोंको बना कर बैठा रहता था। इसके पश्चात् जब वह रमणी अन्नपूर्णाके समान भोजनके कटोरेको ताखमें रखकर मृदु और मधुर कंठसे पुकारती थी—“वसन्त!” उस समय वसन्त प्रफुल्लित होकर एक ही छलांगमें

निकट पहुंचकर दोनों हाथोंसे उस कटोरेको थाम लेता था; किन्तु अपने उस अपरिचित और अदर्शित प्रेमीके हाथोंसे कटोरा लेनेमें उसे बहुत समय लगता था !

वे हाथ वसन्तके जीवन-सर्वस्व थे। उन्हें वह अपनी सारी आशाओं और आकांक्षाओंका अवलम्बन समझता था और नेत्रभरकर उन्हें ही देखता था। उन हाथोंके विशेष आकारको, अंगुलियोंकी विशेष भंगीको, नखोंकी विशेष गठनको, हथेलियोंकी रेखाओंकी रचनाको और दाहिने हाथकी पहुंचीपरके एक छोटेसे काले तिलको निरन्तर देखते देखते वसन्त इस तरह परिचित हो गया था कि हजारोंमें भी वह उन हाथोंको ढूंढ़के निकाल सकता था। उन हाथोंकी अंगुलियोंके स्पर्शमात्रसे वसन्तके शरीरमें जो रस-रोमांचका ज्वार आ जाता था, वह स्पष्ट कह देता था कि जिसकी ये अंगुलियाँ हैं, वह तरुणी लज्जावती और दयावती है। वसन्त सोचता था कि ये हाथ जिस शरीरको अलंकृत करते हैं, यह मन जिस शरीरका संचालक है और यह दयार्द्र कंठस्वर जिस शरीरका शृंगार है, वह शरीर न जाने कितना सुन्दर, कितना दिव्य और कितना प्रशंसनीय होगा।

एक दिन वसन्तसे न रहा गया। उसने उक्त दोनों हाथोंको दबा कर कहा—देवी, मेरे ऊपर यह ऋणका बोझा किसकी ओरसे बढ़ाया जा रहा है ? तुम कौन हो, जो इस बँधुएको और भी गाढ़े बन्धनोंसे कस रही हो ? क्या मैं ऋणी ही होता जाऊंगा ? यहां उसके चुकानेका तो कोई भी उपाय नहीं दिखलाई देता।

युवतीने स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—मालाकार, तुम डरो मत। जो तुम्हारे बड़े भारी ऋणसे दब रही है, वही इस समय अपनी कृतज्ञताका एक अंश मात्र प्रकाश करनेकी चेष्टा कर रही है।

वसन्तने विस्मित होकर पूछा—मेरे ऋणसे दब रही हो ? तुम कौन हो ?

तरुणीने कहा—मेरा नाम सुभद्रा है।

वसन्त नम्र स्वरसे बोला—भद्रे, तुम कौन हो, यह तो मैं नहीं जानता; परन्तु तुम्हारी दयाको देखकर मुझे अब फिर नरलोकमें आनेकी इच्छा होती है।

तरुणीने कातर होकर कहा--मैं अपने प्राण देकर भी यदि तुम्हें मुक्त कर सकती, तो करनेमें आनाकानी नहीं करती । तरुणीका यह वाक्य आँसुओंसे भीगा हुआ था। वसन्तने अपने हृदयमें उसका आर्द्र और कम्पमान् स्पर्श किया । उसने मुग्ध होकर कहा--राजकुमारियां क्या इस अभागीका कभी एक बार भी स्मरण नहीं करती हैं ?

" नहीं वसन्त, उन्हें ऐसी तुच्छ बातोंके विचार करनेके लिए कहां अवकाश है ? इन्दिरा, शुक्ला और आनन्दिता तीनों कर्नाटक, कलिंग और मद्रदेशके सिंहासनोंको भाग्यशाली बनानेकी चिन्तामें व्यग्र हो रही हैं ।"

" और राजकुमारी यमुना ? "

" वह बेचारी साहसहीन, शक्तिहीन आर रूपहीन है । उसके बहिरंगको तो विधाताने ढँक रक्खा है और अन्तरंगको उसने स्वयं ढँक रक्खा है । फिर उसका कहां ऐसा भाग्य है, जो तुम्हारी कुछ चिन्ता कर सके । और जिस अन्तःपुरमें एक निरपराधी पुरुष पलपलमें मृत्युके मुखकी ओर जा रहा है, उसको छोड़कर तो वह कहीं जा ही नहीं सकती है । उसकी बहिनोंने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त उसे भोगना पड़ेगा । "

वसन्तने विस्मित होकर कहा--तो यमुना मेरा स्मरण करती है ?

" वसन्त, वह स्मरण ही क्या करती है रातदिन तुम्हारे नामकी माला जपा करती है। तुमने उसे जो इतने दिन पुष्पमालायें भेट करके, गायन सुनाकरके और प्रेमका पाठ पढ़ाकरके संतुष्ट किया है, सो आज क्या वह तुम्हें विपत्तिके मुँहमें डालकर भूल जायगी ? इतना बड़ा साहस करनेकी तो उसमें योग्यता नहीं है । "

वसन्त लज्जित होकर बोला--मैंने तो उसे किसी दिन संतुष्ट नहीं किया है। मैं तो उसे बचे-खुचे गंधहीन फूलोंकी एकाध बेडौल माला बनाकर अनादरपूर्वक दे दिया करता था ।

सुभद्राने विनयपूर्ण कंठसे कहा--वह तो उसीको बड़े भारी आदरसे अपने मस्तकपर चढ़ाती थी । उसने अपने जीवनमें और अधिक कभी पाया ही न था, इस लिए तुम्हारे द्वारा वह जो कुछ अल्प स्वल्प पाती थी, उसीको बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण करती थी ।

" यदि ऐसा है, तो उसने मेरा प्रणयदान क्यों स्वीकार न किया ? "

"इसलिए कि, वह हतभागिनी है। जिस समय वह आपके पास गई थी, उस समय आपने उससे कुछ भी न कहा था। केवल अपनी व्यथासे व्यथित करके उसे आपने बिदा कर दिया था।"

वसन्तका मन सुख और दुःखमें डूबने उतराने लगा। उसने उत्तेजित स्वरसे कहा--तो वह इस समय मुझे देखनेके लिए क्यों न आई?

सुभद्राने कुछ ऊंचे उठकर अपनी स्वच्छ और सुन्दर दृष्टिको ताखमेंसे डालते हुए कहा--वह आपके देखनेके लिए बराबर आती है; परन्तु बेचारी बड़ी ही लज्जालु और साहसहीन है। इसलिए अपनेको आपके सामने प्रकाशित नहीं कर सकती। मैं उसीकी इच्छासे आपकी सेवा करती हूं।

वसन्तने प्रफुल्लित होकर सुभद्राके हाथोंको और भी गाढ़तासे पकड़कर कहा–भद्रे, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे अब फिर जीनेकी लालसा होती है। क्योंकि संसारकी सारी स्त्रियां इन्दिरा, शुक्ला, आनन्दिता ही नहीं हैं; उनमें यमुना और सुभद्रा जैसी भी हैं। भद्रे, मैंने यमुनाको देखी तो थी; परन्तु यह न समझा था कि वह ऐसे उत्तम स्वभावकी होगी। तुम्हें देखा नहीं है, तो भी समझ लिया है कि तुम्हारा अन्तरंग कितना सुन्दर है। यमुनाको कुरूप देखकर मैंने जो उसका अनादर किया था, मुझे उसकी लज्जा आज उसकी दयाके कारण असह्य हो गई है। तुम उससे इस रूपलोलुपकी अविनय क्षमा करनेके लिए प्रार्थना करना और भद्रे, तुम यदि मुझे ग्रहण करनेकी कृपा करो, तो मैं बच सकता हूं। इस अन्ध कारागृहसे मैं सहज ही बाहर हो सकता हूं।

सुभद्रा बोली—मैं भी तो यमुनाहीके समान कुरूपा और श्रीविहीना हूं।

वसन्तने उत्तेजित स्वरसे कहा—हो, तुम्हारा रूप काला और शोभाहीन हो, तो भी वह मेरे लिए नयनाभिराम होगा। जिसके ऐसे दुःखापहारी हाथ हैं, ऐसा सदय हृदय है और ऐसा विनयनम्र मधुर कंठ है, उसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं है–उसकी तुलना सारे जगतमें नहीं मिल सकती।

सुभद्राने कहा—तुमने मेरा कुछ परिचय तो पूछा ही नहीं।

वसन्त बोला—मैं अब तुम्हारा कुछ भी परिचय नहीं चाहता। एक बार इस बाहरी परिचयके प्रपंचमें पड़कर मैं यमुनाका अपराधी बन चुका हूं। तुम्हारा अन्तरंग परिचय ही मेरे लिए यथेष्ट है। इतना ही जानना बस

है कि तुम सुभद्रा हो, तुम मुझपर प्यार करती हो और मैं तुमपर प्यार करता हूं। यह अन्तिम परिचय ही तुम मुझे दे दो। कहो, भद्रे, यदि मैं यहांसे छूटकर बाहर हो सकूं, तो क्या तुम राजकुमारियोंका संग और राजमहलका ऐश्वर्य त्यागकर मेरी झोपड़ीमें रहनेके लिए चल सकोगी? एक साधारण मालीका हाथ तुम पकड़ सकोगी?

सुभद्राको बड़ी लज्जा मालूम हुई। वह अपने मुखसे कैसे कह दे कि मैं तुम्हें प्राणपणसे चाहती हूं! उसका हृदय बाहर आकर कहना चाहता था कि हां, मैं तुमपर प्यार करती हूं–तुम्हें चाहती हूं–सब कुछ छोड़कर मैं तुम्हारी झोपड़ीमें सुखसे रहूंगी–तुम्हें सुखी करना ही मेरा श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अन्तिम आकांक्षा है; परन्तु लज्जा उसको बोलने न देती थी। वह अभी तक जो इतनी बातचीत कर रही थी सो इस कारण कि एक तो वसन्तके और उसके बीचमें आड़ थी और दूसरे वसन्त उससे परिचित न था; परन्तु अपरिचिता और ओटमें होनेपर भी वह अपने मुखसे किसी तरह प्रणय-निवेदन न कर सकती थी।

उत्तर न पाकर वसन्तने फिर कहा—कहो सुभद्रे, कहो। इस हतभागीका सुख-दुःख जीवन-मरण तुम्हारे ही उत्तरपर निर्भर है! क्या तुम इस सामान्य मालीको ग्रहण कर सकती हो?

सुभद्रा लज्जासे सकुचकर बड़ी कठिनाईसे मृदु स्वरसे बोली—वसन्त, यदि तुम सामान्य हो, तो मैं भी तो असामान्या नहीं हूं। तुम यदि मुझे काली कुरूपा जानकर भी ग्रहण करोगे, तो तुम्हारी झोपड़ी मेरे लिए अट्टालिकासे भी बढ़कर होगी।

इन थोड़ेसे वाक्योंको कहकर सुभद्रा, अपने आप मानो लाजके मारे मर गई।

वसन्तने उसके हाथ दबाकर कहा––सुभद्रा, मैं जीऊंगा––तुम्हारे लिए ही जीऊंगा! अब तुम मेरे लिए कुछ लिखनेका सामान ला दो, जिससे मैं अपने मुक्त होनेकी तजवीज कर दूँ।

"रात होनेपर ला दूँगी," ऐसा कह कर सुभद्रा अपने प्रेमीकी व्यग्र मुट्ठीको शिथिल करके और उसमेंसे अपने हाथ छुड़ाकरके चली गई।

कैदीकी आनन्द-रागिनीसे आज सारा राजमहल एकाएक चकित स्तंभित हो गया। उस भुवन-मोहिनी-ध्वनिसे प्रत्येक श्रोताके हृदयमें आनन्दकी

लहरें उठने लगीं; परन्तु यमुना एकान्तमें जाकर न जाने क्यों रोदन करने लगी।

वसन्तका हृदय आज प्रेमके प्रतिदानसे आनन्दित हो रहा है। प्यारीके कोमल करस्पर्शने उसके सारे शरीरको पुलकित कर दिया है। वह व्याकुलतासे रातकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसे ऐसा भास होने लगा कि इस अंध-कारागृहके लोहेके कठिन किवाड़ बिलकुल खुल गये हैं और मैं चांदनीके प्रकाशमें पुष्पशय्यापर बैठा हुआ सुभद्राको फूलोंसे सजा रहा हूं।

अंधकारागारके अंधकारको सघन करती हुई रात आ गई। इसके पश्चात् सघन अंधकारको एकाएक प्रसन्न करके प्रकाशमान दीपोंकी सुवर्णकिरणोंने मानो काले रेशमकी जरी बुनना शुरू कर दी। बाहरसे सुभद्राने धीरेसे कहा——वसन्त !

वसन्तने रोमांचित होकर कहा——सुभद्रा !

सुभद्राने कागज कलम दावातको ताखमेंसे आगे करके कहा——यह लो !

आनन्दित वसन्तने ताखके मार्गसे आनेवाले नाम मात्र प्रकाशके सहारे आंखें फाड़ फाड़ कर बड़ी कठिनाईसे एक पत्र लिखा और फिर कहा—भद्रे, प्रतिज्ञा करो कि यह चिट्ठी तुम न पढ़ोगी और यमुनाको भी न दिखलाओगी। यदि दया करके इसे तुम अवन्ती राज्यके मंत्रीके पास भेज दोगी, तो मैं इस कारागृहसे सहज ही मुक्त हो जाऊंगा।

सुभद्राने कहा—मैं शपथ करती हूं, तुम्हारी आज्ञाकी अक्षरशः पालना करूंगी।

उसी रातको एक दूत चिट्ठी लेकर अवन्तीको रवाना हो गया।

(६)

दूतके अवन्ती जाकर वापिस आनेमें जितने दिन लगना चाहिए, वसन्तने उनका मन ही मनमें अनुमान कर लिया और फिर वह अपने अंधकारागारमें जहां कि अंधकारके कारण रात और दिनका भेद ही न मालूम होता था, छतके सूराखोंमेंसे जो सूर्यकी इनी गिनी किरणें आती थीं, उनकी घड़ी देख देखकर तथा सुभद्रासे पूछ पूछ कर दिन गिनने लगा।

एक दिन सुभद्राने आकर कहा——वसंत, आज अवन्ती-राज्यका मंत्री सेना-सहित आकर उपस्थित हो गया है; परंतु वह तो तुम्हारे उद्धार करनेकी कोई भी चेष्टा नहीं करता।

बसन्तने हँसकर पूछा—तो वह किस अभिप्रायसे आया है?

"वह तो विवाहसम्बन्ध जोड़नेके लिए आया है!"

"किसका?

"राजकुमारी यमुनाके साथ अवन्तीके महाराजके भाईका और महाराजके साथ—"

सुभद्रासे इससे आगे और कुछ न कहा गया। लज्जासे उसके मुँहकी बात ओठोंमें अटक रही।

सुभद्राको लज्जाके कारण चुप देखकर वसन्तने हँसकर पूछा—और अवन्तीके महाराजके साथ किसका?

सुभद्राके मुँहपर लज्जा झलक आई। उसने नीचा सिर करके धीरेसे कहा—इस अभागिनी सुभद्राका।

वसन्तने उत्साह दिखलाकर कहा—अच्छा! तब तो बड़ी खुशीकी बात है।

सुभद्रा वसन्तके उत्साहप्रकाशसे खिन्न होकर बोली—वसन्त, यह खुशीकी बात नहीं है!

वसन्त विस्मित होकर बोला—सो क्यों? अवन्तीके राजा तो सार्वभौम राजा हैं, फिर खुशीकी बात क्यों नहीं?

सुभद्राने दृढ़तापूर्वक कहा—अवन्तीनरेश सार्वभौम राजा हैं; परन्तु सार्वमानस तो नहीं हैं?

"तब क्या सम्राटकी प्रार्थना व्यर्थ होगी?"

"व्यर्थ तो वैसे ही होती। यदि सम्राटके भाई यमुनाको स्वयं देखते, तो उनका आग्रह उसके लिए कदापि स्थिर न रहता और सुभद्रा तो इस राजमहलमें ऐसी अपदार्थ है कि उसे कोई पहिचानता भी नहीं है। सम्राटके चतुरसे चतुर जासूस भी उसको ढूंढ़कर नहीं निकाल सकते। परन्तु हां, इस अन्तःपुरमें राज्यलोलुप राजकुमारियोंकी कमी नहीं। वे राजाकी प्रार्थनाको व्यर्थ न होने देंगी।"

वसन्तने मुसकुराते हुए कहा—सुभद्रा, अब मेरा छुटकारा बहुत शीघ्र होनेवाला है। आज इस अंधकारमें हमारा तुम्हारा यह अन्तिम मिलन है। कल हजारों स्त्रियोंमेंसे तुम्हारे जिन हाथोंको देखकर मैं तुम्हें पहि-

चान सकूँगा, आज उन हाथोंसे तुम मुझे बाहर आनेके लिए निमंत्रण कर जाओ।

सुभद्राने अपने कांपते हुए हाथोंको ताखमेंसे आगे बढ़ा दिया। वसन्तने उन्हें अपने आतुर हाथोंसे कसकर जकड़ लिया; परन्तु उसके आकुल ओष्ठ उतनी दूर न जा सके।

दूसरे दिन सबेरे ही वसन्तकी निश्चित निद्रामें व्याघात डालकर कारागारके किवाड़ आर्त्तनाद करते हुए खुल पड़े। स्वयं काशीराजने अवन्तीके मंत्रीके सहित कारागारमें प्रवेश किया।

काशीराजने वसन्तके चरणोंमें पड़कर हाथ जोड़ प्रार्थना की कि महाराज, मेरे अज्ञात अपराधोंको क्षमा कीजिए।

मंत्रीने अभिवादन करके कहा—चक्रवर्ती महाराजकी जय हो।

वसन्त राजाको अभयप्रदान करके कारागारसे बाहर हुआ और थोड़ी ही देरमें स्नानादि करके वस्त्रभूषणोंसे सुसज्जित हो गया।

काशीराजने अपनी भयभीत और लज्जित कन्याओंको वसन्तके सन्मुख बुलवाया। वे सब एक एक आईं और दूरसे प्रणाम करके एक ओर सिर नीचा किये हुए खड़ी हो गईं। सबके पीछे यमुना आई। उसने लज्जासे सकुचते हुए समीप जाकर प्रणाम किया। उसकी सद्यःस्नाता केशराशिने बिखर कर वसन्तके दोनों पैरोंको ढँक लिया। केशोंकी कोमलता और आर्द्रताने वसंतके हृदयको पानी कर दिया। उस समय उसने यमुनाका मस्तक स्पर्श करके मानों यह चाहा कि मैं हृदयकी गहरी प्रीतिके जलसे अपने पिछले अन्याय्य आचरणोंको धो डालूं।

काशीराजने कहा—महाराज, आपको इन अबोध बालिकाओंका अपराध क्षमा करना पड़ेगा।

वसन्तने कहा—मैंने इन सबको आपकी इस उपेक्षिता तिरस्कृता कन्याके गुणोंसे प्रसन्न होकर क्षमा कर दिया है और मुझे स्वयं इससे क्षमा मांगना है।

यह कहकर वसन्तने अन्य राजकुमारियोंकी ओर न देखकर केवल यमुनाको लक्ष्य करके कहा—यमुना, तुम मेरे पिछले अपराधोंको क्षमा कर दो।

यमुना नीचा सिर किये हुए नखोंसे जमीनपर कुछ लिखने लगी । अपनी गर्विता बहिनोंके और स्नेहहीन पिताके समक्ष उसे यह लांछना और लज्जा असह्य हो गई ।

वसन्त यद्यपि उस समय सबसे वार्तालाप कर रहा था; परन्तु उसके नेत्र व्याकुल होकर अन्तःपुरके चारों ओर प्रत्येक किबाड़की ओटमें किसीको खोजते फिरते थे । उसकी सुभद्रा कहां है ? उसकी सेविका कहां है ? उसकी प्यारी कहां है ? वह तो उसके मुखको पहचानता नहीं है— पहचानता है उसके हाथोंको, उसके कंठस्वरको और उसके सदय हृदयको ।

अपनी याचनाका उत्तर न पाकर वसन्तके नेत्र यमुनाकी ओर फिर आये । यमुनाके हाथ देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा । ये वे ही हाथ थे, जो उस कारागारके अंधकारमें प्रकाश करके उसे धीरज बँधाते थे ! वे ही अंगुलियां, वे ही हथेलीकी रेखाएँ और वही पहुंचीपरका तिल; सब कुछ वही था ।

वसन्तका मुख आनन्दसे खिल उठा । प्रणयकृतज्ञताके मोहन स्पर्शसे यमुनाकी मूर्ति वसन्तकी दृष्टिमें अतुलनीय रूपवती झलकने लगी । एक अतिशय सुन्दर, चित्रकिशोर और अशरीरी देवताके वरसे वसन्तकी दृष्टिमें जो प्रेमका अंजन अँज गया था, उसके कारण वसन्तको दिखाने लगा कि यमुना अनुपम यौवनसे, आनन्दसे, माधुर्यसे, सौंदर्यसे और कल्याणसे जगमगा रही है । वसन्तने उस समय काशीराजकी ओर फिर कर रहा— आपसे मैं एक भिक्षा चाहता हूँ ।

" भिक्षा ? महाराज, आप यह क्या कह रहे हैं ! ऐसे शब्द कहकर अपराधीके अपराधको और मत बढ़ाइए । मुझे तो आदेश कीजिए— आज्ञा दीजिए ।"

" अच्छा, आपने जो मेरा अपराध किया है, उसके दंडस्वरूप मैं आपके भांडारका एक बहुमूल्य रत्न लेना चाहता हूं । "

" यह तो आपकी कृपा है, और मेरा सौभाग्य है । कहिए, कोषाध्यक्ष आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहा है । "

वसन्तने हँसकर कहा—मैं जिस रत्नकी बात कहता हूं, उस रत्नको आपका कोषाध्यक्ष न पहचान सकेगा। मैंने उसका बड़ी कठिनाईसे पता लगाया है। वह दूर भी नहीं है। देखिए, यह है—

ऐसा कहकर वसन्तने कुछ आगे झुककर यमुनाके दोनों हाथ थाम लिये और लोगोंके विस्मयकी परवा न करके उससे हँसकर कहा—क्यों सुभद्रा, क्यों यमुना, एक चक्रवर्ती नरेशके साथ ऐसी ठगाई! ठहरो, मैं तुम्हें इसका दंड देता हूं। काशीसे अवन्तीके राजमहलमें तुम्हारा निर्वासन (देश-निकाला) किया जाता है। क्यों, यह दंड स्वीकार है? मालूम होता है, आज अवन्तीकी प्रार्थना व्यर्थ न जाने पायगी। यदि अवन्तीके राजप्रासादमें तुम्हें अच्छा न लगेगा, तो वहां फूलोंके वनोंकी भी कमी नहीं है और अवन्तीके महाराजको उसी वसन्त मालीकी जगह दे दी जायगी। फिर तो प्रसन्न रहोगी? उसकी वीणा तुम्हारी विरद गाया करेगी और वह तुम्हारे गलेमें डहडहे फूलोंकी माला पहिनाया करेगा। तुम्हारे दिये विना वह बाहर जानेके लिए छुट्टी भी न पा सकेगा!

इस समय यमुनाकी दशा बड़ी ही विलक्षण थी। उसके हृदयमें आनन्दका और लज्जाका द्वन्द्वयुद्ध मच रहा था। लज्जाका बल ज्यादा होनेके कारण आनंद अपने साथ शरीरको भी लेकर गिरना चाहता था।

काशीराजने इस विश्वासके अयोग्य घटनासे विस्मित होकर कहा—महाराज, मेरी ये समस्त सुन्दरी कन्यायें इस समय अविवाहिता हैं।

वसन्त अपने हास्यसे उन समस्त सुन्दरियोंको अतिशय लज्जित करता हुआ बोला—नहीं, राजन्, मैंने तो सुना है कि ये कर्नाटक कलिंगादि देशोंके सिंहासनोंको उज्ज्वल करेंगी।

"किन्तु महाराज, इन्हें आपके श्रीचरणोंके समीप स्थान दिया जाय, तो ये प्रसन्नतासे कर्नाटक कलिंगादिके सिंहासनोंके त्याग करनेके लिए प्रस्तुत हैं।"

वसन्तने मुसकुराकर कहा—काशीराज, मेरा रूपका नशा अब उतर गया है। राजाओंके महलोंमें हृदय खरीदकर पाया जा सकता है, जीत करके नहीं। यह जान करके भी मैं दीनवेषको धारण करके हृदय जीतनेके लिए निकला था। परन्तु मैंने यहां एक ऐसे हृदयको पाया, जो

हृदयका प्रेमी है, राज्यका नहीं। और इस तरह जीतनेके लिए आकर मैं बड़े आनन्दसे हार गया। मेरी यह काली वधू ही मेरे राज्यको उज्ज्वल करेगी। यह कौन नहीं जानता कि यमुना (नदी) काली है! इसीलिये उसका हृदय गंभीर और शीतल है। यामिनी काली है, इसीलिए उसके शरीरमें अगणित तारागणोंकी मालायें चमकती हैं और इसी तरह काले कोयलेके भीतर प्रकाशमान हीरा छुपा रहता है। यमुना, मैं अनादर करके तुम्हें अपराजिताके फूलोंकी माला दिया करता था। किन्तु अब दुःखसे फिर सुखमें आकर मैंने समझा है कि तुम वास्तवमें अपराजिता हो, तुम्हारी तुलना किसीसे नहीं हो सकती।

कञ्छुका।

१ राजनीति।

भारतवर्षमें दशमी शताब्दीके प्रारंभमें इतने छोटे छोटे स्वाधीन राज्य स्थापित हुए थे कि उनकी गिनती करना कठिन था। स्वार्थी, बलहीन और विलासप्रिय राजालोग अपने अपने राज्यमें सब चिन्ताओंसे मुक्त होकर समय बिताया करते थे और मुसलमान लोग मौका पाकर धीरेधीरे पंजाबकी सीमामें प्रबल होते जाते थे। हम जिस समयका उल्लेख करते हैं, उस समय चंदेलवंशीय राहल राजाका पुत्र हर्षदेव बुन्देलखण्डका राजा था। वह बड़ा स्वदेशानुरागी था और सदैव इसी चिन्तामें मग्न रहता था कि भारतवर्ष विदेशी आक्रमणोंसे किस तरह बच सकता है। सीमान्तप्रदेशोंको सुरक्षित रखनेके लिए समस्त देशके राज्यबलको एकत्र करना आवश्यक और उचित समझकर उसने एक बार भिन्न भिन्न प्रदेशोंकी राजसभाओंमें दूत भेजे; परन्तु किसीने भी उसकी बातपर ध्यान न दिया।

उस समय भारतवर्ष पुण्यहीन था; मनुष्यकी चेष्टासे उसका उद्धार होना असंभवसा हो गया था। एक दिवस संध्यासमय हर्षदेव योद्धाओं और पंडितोंके साथ राजसभामें बैठे थे; इतनेमें भाटोंने आकर उनका यशोगान करना प्रारंभ किया। राजाने उन्हें रोककर कहा कि—" मैं सिर्फ इस छोटेसे

बुन्देलखण्डका शासनकर्त्ता हूं, तुम मुझे समस्त सागरोंसहित पृथ्वीका अधीश्वर कहकर मेरा अपमान मत करो।"

भिन्न भिन्न देशोंकी राजसभाओंसे लौटे हुए दूतगण एक एक करके राजा लोगोंकी सम्मति प्रगट करने लगे। कन्नौजसे लौटे हुए दूतने कहा—"महाराज कन्नौजपति महेन्द्रपालदेव और उनके सभा-पण्डितोंने कवि राजशेखरप्रणीत 'विद्धशालभंजिका' भेजी है और उसके शिरो-भागपर अपने हाथसे आपके प्रस्तावका उत्तर लिख दिया है।" राजाने ग्रन्थको लेकर देखा। उसपर लिखा था—"काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।" राजाने विरक्ति प्रकट करके सिर झुका लिया। दूसरे दूतने आकर राजाकी शरणमें एक पत्र रक्खा। उसे राजाने स्वयं पढ़ा। चेदिकुलके कलचुरिवंशीय मुग्धतुङ्ग प्रसिद्धधवल राजाने लिखा था कि—"मैं स्वयं पराक्रमी और बाहुबलसम्पन्न हूं। यवन लोगोंको सहज ही हरादेनेकी शक्ति रखता हूं। अन्य राजाओंसे मिलकर मैं अपने आत्मगौरवको नहीं घटाना चाहता।" हर्षदेवने मंत्रीसे कहा—इसीको विपत्तिकालकी विपरीत बुद्धि कहते हैं। छोटेसे कौशलराजको हराकर तथा समुद्रतटके दुर्बल राजाओंको जीतकर कलचुरि राजा बहुत अभिमानी हो गया है।

इस समय चोलराज्यमें वीरनारायण या परान्तकदेव राज्य करते थे। उन्होंने केरल-राजकुमारीसे विवाह करके, विशेषकर केरलपतिकी सहायतासे पाण्ड्यराजको पराजित किया था, तथा एक बार लंकातक विजय-यात्रा करके वहांके राजा पंचम कश्यपको हराया था। हर्षदेवको विश्वास था कि वीरनारायण समस्त दक्षिण प्रदेशका सार्वभौम राजा हो सकता है। इसलिए उसने उसकी विजयी यात्रापर आनन्द प्रकाश करके अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। परन्तु वीरनारायणके पत्रमें केवल यही उत्तर लिखा था,—"उत्तर भारत बहुत दूर है।" तब हर्षदेवने विचारा कि मैं एक बार समीप वर्त्ती राजाओंसे स्वयं मिलूं और उनकी इच्छा देखूं, पीछे जो कुछ उचित जँच पड़ेगा किया जायगा।

३ प्रगल्भा।

लूनीर नदीका जल बहुत निर्मल और शीतल है। अजमेर प्रान्तमें इस समय जहांपर तारागढ़ है उसकी दक्षिण दिशासे होकर एक समय

लूनीर नदीकी धारा बहती थी। बड़े प्रातःकाल कुमारी कञ्छुकाने नदीके शीतल जलमें स्नान करके देवमंदिरमें प्रवेश किया। इस समयके पाठकोंको कञ्छुका नाम अच्छा न लगेगा; परन्तु क्या किया जाय, कवित्वप्रिय पाठकोंके लिए ऐतिहासिक नामका परिवर्तन नहीं हो सकता। नाम कैसा ही हो, पर कुमारी कञ्छुका थी बहुत सुन्दरी। क्योंकि उसके देवमन्दिरमें प्रवेश करते ही, एक सौम्यमूर्ति संन्यासी युवक उसे देखकर देवपूजाका मंत्र भूलकर मन–ही–मन यह पाठ पढ़ने लगा था,—

कनककमलकान्तैः सद्य एवाम्बुधौतैः
श्रवणतटनिषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः।
उषसि वदनबिम्बैरंससंसक्तकेशैः
श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽद्य॥

इस समय अजमेरमें नये चौहान वंशका राज्य था। राजा गोवकके पुत्र चन्दन उस समय सिंहासनारूढ़ थे। कुमारी कञ्छुका राजा चन्द–नकी बहिन थी।

सुन्दरीने ईश्वरके चरणोंमें अंजली प्रदान करके संन्यासीके चरणोंपर अपना मस्तक नवाया। संन्यासी चकित हो उठकर कहने लगा—"मैं आपका प्रणाम ग्रहण करनेके अयोग्य हूं, विशेषकरके इस देवमन्दिरमें ईश्वरके सिवा दूसरा कोई वंदनीय नहीं हो सकता।" कुमारीने मन्दहास्यसे कहा—"जब स्वयं चौहाननरेश आपके भक्त हैं, तब यदि उनकी छोटी बहिनने आपको प्रणाम किया तो इसमें हानि क्या हुई?" संन्यासी यह परिचय पाकर मन–ही–मन बहुत प्रसन्न हुआ।

राजकुमारी यद्यपि प्रगल्भा मालूम होती है; परन्तु उसके दोनों नेत्र मुग्धाके नेत्रोंके समान हैं। संन्यासीकी ओर देखकर बातचीत करनेके समय उसके दोनों पलक ज्यों ही कुछ ऊपर उठकर और सुकोमल दृष्टिको ढककर अवनत हुए, त्यों ही संन्यासीका मस्तक घूम गया। संन्यासीने देखा कि उसके प्राणोंने प्राचीन वक्षोगृह छोड़कर युवतीकी कुछ खुली हुई दृष्टिके मार्गसे सौन्दर्य्यके नवमन्दिरमें प्रवेश किया है। वह चिन्ता करने लगा कि अब यदि यह मनोमोहिनी नेत्रोंके पलक खोल करके फिर देखे भी, तो भी, इसमें सन्देह ही है कि गये हुए प्राण फिर लौटेंगे या नहीं।

इसके बाद ही कुमारीकी देवभक्ति बढ़ उठी। वह दोनों समय मंदिरको आने लगी और कभी कभी तो वह अपनी दासियोंको भी साथ लाना भूल जाने लगी!

एक दिन संन्यासी मन्दिरकी सीढ़ियोंपर बैठकर बायें हाथसे नेत्रोंको बंदकरके मानस–पूजामें मग्न हो रहा था। उसी समय कुमारी धीरे धीरे उसके पास आई। उस समय तक सायंकालकी आरतीके लिए मंदिरका द्वार न खुला था। संन्यासीका ध्यान भंग हो गया। उसने नम्रस्वरसे कुमारीसे कुशलप्रश्न किया। कुमारीने कहा– "मैं संन्यासधर्म ग्रहण करूंगी और आपकी शिष्या होऊंगी।" कुमारी सचमुच बड़ी प्रगल्भा है। इसके पीछे उन दोनोंकी क्या बातचीत हुई; सो तो हम नहीं कह सकते; परन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि देवमंदिरका द्वार मुक्त होनेके पहले ही उन दोनोंके हृदय-द्वार मुक्त हो चुके थे।

इसके दूसरे दिन संन्यासी युवकने राजसभामें प्रस्ताव पेश किया कि मैं पुरोहित होकर कुमारी कञ्चुकाका विवाह बुन्देलखण्डके राजा हर्षदेवके साथ करना चाहता हूं। राजाने इसे स्वीकार कर लिया। संन्यासी लूनीरके जलमें स्नानादि नित्यकर्म समाप्त करके अजमेरसे यद्यपि प्रस्थानित हो गया; परन्तु यह बात उसके मनमें घूमती ही रही कि लूनीरका जल बहुत निर्मल और बहुत ही शीतल है।

३ युद्धक्षेत्रमें।

यह चिरकालकी रीति है कि सन्धि न होनेसे युद्ध करना पड़ता है। चन्देलपति हर्षदेवने बुन्देलखंडको भारतवर्षका केन्द्र बनानेका निश्चय करके छोटे छोटे राजाओंके साथ अनेक युद्ध किये। कई स्थानोंमें विजय प्राप्त करनेके पश्चात् चेदिवंशीय–कलचुरि राजाओंके साथ युद्ध प्रारंभ हुआ। इस समय गर्वोन्मत्त मुग्धतुंग प्रसिद्धधवलका स्वर्गवास हो चुका था। उसका पुत्र बालहर्ष राजा था। मध्यप्रदेशका वर्तमान सागर जिला चेदिराज्यका प्रधान स्थान था। बुन्देलखंडकी दक्षिण सीमापर सागर जिलेके उत्तरीय भागमें शाहगढ़ नामक नगरमें उभय पक्षका संग्राम हुआ। एक दिन युद्धयात्रा होनेके पहले रानी कञ्चुकाने स्वप्नमें देखा कि एक प्रकाशमय मेघके टुकड़ेपर राजा विराजमान हैं और रानी जितनी ही बार राजाके चरणोंका स्पर्श करनेके

लिए हाथ फैलाती है, उतनी ही बार सिंहासन उससे दूर हट जाता है। जाग्रत होनेपर रानीने प्रतिज्ञा की कि मैं युद्धक्षेत्रमें भी स्वामीके पास सदैव उपस्थित रहूंगी। राजाने बहुत निषेध किया परन्तु रानीने एक भी न सुनी और हँसकर कहा—" संन्यासी महाराज, चौहानवंशकी लड़कियां युद्धको देखकर भयभीत नहीं होतीं। रानी राजासे 'संन्यासी महाराज' कहा करती थीं।

शाहगढ़में सेनाका कोलाहल सुनाई देने लगा। फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशीके मध्याह्न समयसे युद्ध प्रारंभ हुआ। संध्या हो गई, तो भी दोनों दलोमेंसे कोई भी निरस्त न हुआ। सहसा रानीके मनमें एक उत्साहकी तरंग उठी। किसी तरहसे वह डेरेमें न रह सकी। वह व्यग्र होकर युद्ध-वेष धारण करके घोड़ेपर सवार हो गई और डेरेपर जो पचास पैदल सिपाही मौजूद थे, उनको साथ लेकर 'जय चंदेलपतिकी जय' कह करके एक ओरसे शत्रुसेना पर टूट पड़ी। रात्रिके समय नयी सेनाके आजानेसे थकी हुई सेनाने उत्साहहीन होकर युद्धस्थलसे भागना शुरू कर दिया। 'मार' 'मार' शब्द कहती हुई बुंदेलखंडकी सेना उसका पीछा करने लगी।

विजय प्राप्त करनेके पश्चात् राजा और रानी दोनों एक साथ अपने शिविरको लौटे। रानीकी आज्ञासे तत्काल ही खुली हुई चांदनीमें शय्या बिछाई गई। युद्धवेशका परित्याग किये विना ही महाराज उस पर लेट गये। रानी उनके पास ही बैठ गई। वैद्य बुलाया गया; परंतु महाराजने स्थिर भावसे कह दिया,—" चिकित्साका कुछ फल न होगा, अब उपाय करना व्यर्थ है।" तो भी रानीके अनुरोधसे वैद्यने महाराजके वक्षःस्थलके घावपर औषधका लेप किया और रानीने अपने हाथसे औषध पिलाकर पतिका मुखचुम्बन किया।

हर्षदेवने रानीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—" मेरा एक अनुरोध मानना पड़ेगा। तुम प्रतिज्ञा करो कि मेरी चितापर अपना प्राण विसर्जन न करोगी।" महारानीका कण्ठ शोकके आवेगसे रुद्ध हो गया। उन्होंने बड़ी कठिनाईसे कहा—" देव, रमणीजन्मका जो यथार्थ सुख है, उससे

आप मुझे किस अपराधके कारण वंचित करते हैं ? ” महाराजने रानीको अपनी भुजाओंसे वेष्टित करके कहा—“ देवि, दैवदत्त जीवनको आत्महत्या करके नाश करनेका किसीको अधिकार नहीं है । सुखकी आशा छोड़कर दुःख वहन करो, यही जीवनका यथार्थ गौरव है । जिस मंत्रसे हम और तुम दोनों लूनीरके तीरपर दीक्षित हुए थे, उसी मंत्रसे बालक यशोवर्माको दीक्षित करो । पुत्रकी जननी बनकर हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिए अपने जीवनकी रक्षा करो । ” रानीकी आज्ञासे पुत्र यशोवर्माके लानेके लिए उसी समय सवार दौड़ाये गये ।

परिशिष्ट ।

एपिग्राफिया इंडिकामें संग्रह किये हुए शिलालेखोंसे पाठक जान सकेंगे कि महाराज हर्षदेवकी इच्छा और उनकी रानीकी साधना बहुत अंशोंमें पूर्ण और सफल हुई । यशोवर्माने अपनी मातासे युद्धदीक्षा लेकर गौड, खस, कौशल, काश्मीर, मिथिला, मालव, चेदि, कुरु और गुर्जर देशका विजय किया ।

तिब्बतनरेशके यहांसे कन्नोजपतिने एक सुन्दर देवमूर्ति प्राप्त की थी । ईस्वी सन् ९४८ में यशोवर्मा उक्त देवमूर्तिको कन्नौजसे ले आये और एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें उसको प्रतिष्ठित किया । यह मन्दिर उन्होंने अपने माता पिताकी वैकुंठ-कामनासे बनवाया ।

जयमाला ।

(१)

चित्रकारका नाम छविनाथ है । चित्र खींचना ही उसके जीवनका व्रत है । कवि जिस तरह काव्यका आलाप करके, स्वरमें छन्दको मिलाकर कविताद्वारा अपने मनका भाव प्रकाशित करता है, उसी तरह छविनाथ अपनी निपुण कमलसे रंग भरकर, तथा रेखाओंको खींचकर अपने मनका भाव चित्रमें स्पष्ट रूपसे झलका देता है । उसके अंकित चित्र ऐसे सुन्दर प्राकृतिक और भावयुक्त होते हैं कि उन्हें देखकर यथार्थ वस्तुका भ्रम होता है । आकाशमें पक्षी उड़ता है—उसका खींचा हुआ चित्र देखकर उसे लोग सहसा नहीं कह सकते कि यह सचमुच पक्षी है या उसका चित्र !

चित्रकलामें उसकी ऐसी निपुणता देखकर प्रायः देशके समस्त चित्रकार मन-ही-मन उससे द्वेष रखते हैं । परन्तु छविनाथके मनमें ईर्षा-द्वेषका लेश भी नहीं है । उसका मन दूधके समान स्वच्छ है; वह बालकोंके समान सदैव प्रसन्न रहता है ।

छविनाथ एक उच्च श्रेणीका चित्रकार है । उसकी इस निपुणताको सर्वसाधारण लोग नहीं जान सकते, केवल समस्त चित्रकार ही उसके गुणोंसे परिचित हैं; परन्तु वे इस बातको प्रकट न करके अपने अपने नामके बढ़ानेहीमें प्राणपणसे चेष्टा करते हैं । छविनाथ चित्र खींचनेहीमें तन्मय रहता है--उसे प्रशंसा पानेकी तिलमात्र भी इच्छा नहीं है ।

एक बार राजसभामें प्रश्न उठा कि देशभरमें सर्वश्रेष्ठ चित्रकार कौन है ? इसका निर्णय करनेके लिए राजाने देशके समस्त चित्रकारोंको निर्दिष्ट समयपर एकत्रित होनेके लिए आज्ञा दी ।

चित्रकारोंने परस्पर विचार करके निश्चय कर लिया कि देहातके रहनेवाले छविनाथको यह राजाज्ञा किसी तरह विदित न होने पावे । वे लोग यह भली भाँति जानते थे कि यदि चित्रप्रदर्शनमें छविनाथका चित्र आया तो हम लोगोंका आशा-कुसुम मुरझाकर गिर जायगा और उसको ही विजय प्राप्त होगी ।

धीरे धीरे निर्दिष्ट समय भी आ पहुँचा । सब लोग राजसभामें उपस्थित हुए । केवल छविनाथ ही इस सभामें न आया ।

राजाने सबको सम्बोधन करके कहा--मैं परीक्षा करना चाहता हूं कि "तुम लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ चित्रकार कौन है । इस लिए नववर्षके प्रथम दिन तुम सब लोग एक एक उत्तम चित्र तैयार करके राजसभामें उपस्थित होओ । उन चित्रोंपरसे ही यह निर्णय किया जावेगा ।

राजाज्ञा सुनकर चित्रकार लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने घर लौटे । उन्होंने मन-ही-मन संकल्प किया कि छविनाथको इस बातकी गंध भी न मिलनी चाहिए ।

(२)

एक पांच वर्षका बालक नदीके किनारे खेल रहा है । खेलते खेलते जब वह आगे पीछे दौड़ता है, तब उसके काले काले केश वायुके झोकोंसे

उड़-उड़कर अपूर्व सौन्दर्य दरसाते हैं। उसके सुदीर्घनेत्र दो फूले हुए नील कमलके समान सुन्दर और भावपूर्ण दिखाई देते हैं।

छविनाथ देखते देखते नदीपर आ पहुंचा। वह एक सुन्दर तसबीर खींचना चाहता था, किन्तु उसे मनके अनुसार आदर्श न मिलता था। बालकको देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ–उसे अपने मनके अनुसार आदर्श मिल गया। वह धीरे धीरे उसके पास जाकर पूछने लगा—

छवि०—तुम्हारा क्या नाम है?

बालक—(हँसकर) मनोहर।

छविनाथ मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ कि नाम भी ठीक है—मनोहर यथार्थमें मनोहर है। अनेक यत्न और प्रलोभनसे उस बालकको उसने एक पत्थरपर बिठाया। बालक हँसते हँसते कहने लगा, "भाई, यह तसबीर मुझे दोगे?"

छवि—चित्र तैयार होनेपर यही तसबीर मैं तुम्हें दूंगा, परन्तु इसे तैयार करनेमें दो तीन दिन लगेंगे, तुम रोज ठीक समयपर यहां आ जाया करो।

बालक—(प्रसन्न होकर) बहुत अच्छा।

छविनाथने पाकेटसे कलम और रंग निकाल कर चित्र खींचना प्रारंभ किया। तीसरे दिन चित्र तैयार हो गया। बालक उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और चित्रकारका हाथ पकड़कर बड़े आग्रहसे उसे अपने घर ले गया। मनोहरका पिता भी इस मनोहर चित्रको देखकर मुग्ध हो गया–वह मन-ही-मन कहने लगा––अहा! मेरे लड़केका चित्र इतना सुन्दर! पहले चित्रकी ओर देखकर और फिर अपने लड़केका मुख निरीक्षण करके वह चकित हो रहा। वह आनंदमें इतना मग्न हो गया कि छविनाथकी अभ्यर्थना करना भी भूल गया।

(३)

आज नववर्षका प्रथम दिन है। राजसभा लतापुष्पोंसे सुसज्जित हो रही है। सुन्दर चन्द्रातपमण्डित सभास्थलके मध्यमें राजसिंहासन सुशोभित है। दाहिनी ओर एक सुंदर गलीचेपर न्यायार्थी चित्रकारगण अपने अपने चित्र लिये हुए बैठे हैं। सामनेकी ओर दर्शकोंके बैठनेकी जगह है।

देशके समस्त चित्रकार राजसभामें उपस्थित हैं। छविनाथको इसकी खबर पहले ही मिल चुकी थी। परंतु वह जानकर भी आज इस सभामें नहीं आया।

चित्र-परीक्षा प्रारंभ होनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है। ऐसे समयमें एक आदमी हांपते हांपते राजसभामें उपस्थित हुआ। उसके हाथमें छविनाथका अंकित किया हुआ मनोहरका चित्र है। सब लोग इस आगन्तुक पुरुषकी ओर देखने लगे। राजाके इशारेसे पहरेवालोंने रास्ता छोड़ दिया। उसने आकर चित्र रखकर प्रार्थना की कि "महाराज! मैं भी विचारप्रार्थी हूं, यह चित्र परीक्षाके लिए लाया हूं।"

चित्रपरीक्षा प्रारंभ हो गई। राजाने एक एक करके सब चित्रोंकी परीक्षा की और अन्तमें मनोहरके चित्रको दाहिने हाथसे उठाया। उन्होंने बहुत समय तक उसका निरीक्षण करक उच्चस्वरसे कहा कि "यह चित्र जिसका खींचा है, वही तुम सब चित्रकारोंमें श्रेष्ठ चित्रकार है।"

सब लोग उस चित्रकी ओर देखने लगे। एक ही साथ सभामें उपस्थित समस्त लोगोंकी दृष्टि उस चित्र पर जा पड़ी। सब ही आश्चर्यसे देखने लगे कि— नदीके तीरपर एक पत्थरपर बैठी हुई सुन्दर सुकुमार बालककी अपूर्व मूर्ति है। उसमें कृत्रिमताका लेश भी नहीं है। उस मूर्तिको देखकर चित्रसे बालकको गोदमें लेनेक लिए दर्शकोंके दोनों हाथ स्वतः ही आगेको बढ़ते हैं।

राजा—(मनोहरके पितासे) इस चित्रके बनानेवालेका क्या नाम है और वह कहां है?

"राजन्, इसके बनानेवालेका नाम मैं नहीं जानता और यह भी नहीं जानता कि वह कहां रहता है। परन्तु यह चित्र मेरे बालककी जीवंत प्रतिमूर्ति है। ऐसा मनोहर चित्र मैंने आजतक नहीं देखा, इसी लिए महाराजकी सेवामें इसे विचारके लिए उपस्थित किया है।"

अनेक अनुसन्धान होनेपर भी चित्रकारका पता नहीं लगा। राजाने मनोहरके पिताको प्रचुर पुरस्कार देकर उस चित्रको अपने पास रख लिया। उस दिन कुछ भी विचार स्थिर नहीं हो सका।

राजाने विचारप्रार्थी चित्रकारोंको बुलाकर कहा—"तुम लोगोंमें कौन श्रेष्ठ चित्रकार है, इसका निर्णय कुछ भी नहीं हो सका। इस लिए तुम लोग फिरसे चित्र तैयार करके लाओ, मैं तुम्हारा विचार करूँगा।"

आज पुनर्बार चित्र-परिक्षाका दिन है। राजा राजवेश धारण करके रानीकी स्वहस्तग्रथित पुष्पमालाको कण्ठमें धारणकर सिंहासनपर विराजमान हैं। पीछे चिककी ओटमें राजवंशीय महिलाओंके बैठनेकी जगह है।

इस बार न मालूम क्या सोचकर छविनाथ चित्र-परीक्षा देखने आया है। राजसभामें एक ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान है, वहांपर ही वह बैठा है। परन्तु किसीने उसे पहचाना नहीं।

राजाके सन्मुख चित्र रक्खे गये। सब लोग आजके फैसलेको जानेनेके लिये उत्सुक हो रहे हैं। विचार आरंभ हो गया। ऐसे समयमें छविनाथकी दृष्टि राजमहलके कक्षमें लटकी हुई एक तसबीरके उपर पड़ी। वह धीरेसे उठा और तसबीरकी ओर अग्रसर हुआ। किसीने भी उस ओर लक्ष्य नहीं किया। सब लोग चित्रपरीक्षा देखनेमें व्यस्त हो रहे हैं। राजाने एक एक करके सब चित्र देखे। अंतमें उन्होंने एक चित्रको उठाकर अपने हाथमें लिया ही था कि इतनेमें 'चोर! चोर!' शब्दसे सभामंडप गूंज उठा। राजाने देखा कि दो पहरेवाले एक आदमीको बाँधे हुए लिये जाते हैं। पहारेवालोंने राजासे निवेदन किया कि "महाराज, यह मनोहरका चित्र चुरानेके लिए आया था।"

राजाने स्थिर दृष्टिसे छविनाथके आपत्तिग्रसित मुखका निरीक्षण किया। वह सिर झुकाये स्थिर भावसे खड़ा है। उनके चहरेपर भयका नाम भी नहीं है। दर्शक लोगोंके कोलाहलसे सभामंडप विकम्पित हो उठा। राजाके कटाक्षपातसे कुछ देरमें शान्ति स्थापित हुई।

राजा—(बंदीसे) तुमने महलमें क्यों प्रवेश किया?

बंदी—(निर्भय मनसे) चित्र देखनेके लिए।

राजा कुछ कहा ही चाहते थे कि इतनेमें मनोहरके पिताने आकर कहा—महाराज, यह वही चित्रकार है, जिसने मेरे लड़के मनोहरका चित्र अंकित किया था।

दर्शकोंमें सन्नाटा छागया—सभास्थल निस्तब्ध हो गया। लोग उत्कंठित होकर फैसला सुननेकी प्रतीक्षा करने लगे।

बंदी बंधनमुक्त कर दिया गया। राजाने सिंहासनसे उठकर रानीके हाथकी गूंथीहुई पुष्पमाला अपने कण्ठसे उतारकर छविनाथके गलेमें पहना दी।

जयका बाजा बज उठा। चिकके अंतरालसे विजयगीत सुनाई देने लगे। राजाके विचारसे सब लोग संतुष्ट हुए। केवल जिन लोगोंने विचार कराना चाहा था वे ही गर्दन झुकाये बैठे रहे।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ० प्र० पुस्तकालय इलाहाबाद

मधुस्रवा।

(१)

गुर्जर प्रदेशके अन्तर्गत कुसुम्भपुरके राजा बन्धुहित बड़े आनन्दसे राज्य करते थे। कुमारी मधुस्रवाकी सेवा शुश्रूषाने, सेनापति बलाहकके शत्रुशासक पराक्रमने और सभाकवि क्षेमश्रीके मधुर काव्यरसने राजाको सर्वप्रकारसे चिन्ता-मुक्त और आनन्दयुक्त कर रक्खा था।

मधुस्रवाकी शरीरलतिकामें लावण्यका ललित कुसुम खिल रहा था, चञ्चल और विशाल नेत्रोंमें शुभ्र दूधकी धाराके समान भोली चितवन खेल रही थी; लहराते हुए अतिशय काले बालों और लीलामय चंचल गतिसे वह काली घटाके बीचमें बिजलीके समान मालूम होती थी।

राजसभाका विशाल भवन समुद्रतटपर शोभा दे रहा था। वह सङ्गमर्मर आदि बहुमूल्य पाषाणोंसे बनाया गया था, उसकी दीवालोंपर तरह तरहके मणिमुक्ताजटित चित्र खिंचे हुए थे और उसके चारों ओर एक रमणीय उद्यान था। दक्षिणकी ओर विशाल समुद्र लहराता था, पूर्वकी ओर छोटीसी विशाखा नदी—जो कि आगे जाकर समुद्रमें मिली है—बहती थी, उत्तरकी ओर नगरसे लगाहुआ मेघमालाके समान धूम्रधूसर मुञ्जकेश पर्वत ऊंचा सिर किये हुए खड़ा था और पश्चिमकी ओर इलायचीकी लताओंसे आलिङ्गन करनेवाले चन्दन वृक्षोंका बगीचा था। समुद्रकी गर्जन, विशाखाकी कलकलध्वनि, मुंजकेशके वृक्षोंकी हरी हरी शोभा और उद्यानकी क्रीड़ा करती हुई सुगन्धित वायु राजसभाको बहुत ही मधुर बनाये रखती थी। साथ ही महाराजके समीप ही बैठी हुई मधुस्रवा अपनी रूपज्योतिसे उसे प्रकाशित किये रहती थी।

आज पुनर्बार चित्र-परिक्षाका दिन है। राजा राजवेश धारण करके रानीकी स्वहस्तग्रथित पुष्पमालाको कण्ठमें धारणकर सिंहासनपर विराजमान हैं। पीछे चिककी ओटमें राजवंशीय महिलाओंके बैठनेकी जगह है।

इस बार न मालूम क्या सोचकर छविनाथ चित्र-परीक्षा देखने आया है। राजसभामें एक ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान है, वहांपर ही वह बैठा है। परन्तु किसीने उसे पहचाना नहीं।

राजाके सन्मुख चित्र रक्खे गये। सब लोग आजके फैसलेको जाननेके लिये उत्सुक हो रहे हैं। विचार आरंभ हो गया। ऐसे समयमें छविनाथकी दृष्टि राजमहलके कक्षमें लटकी हुई एक तसबीरके उपर पड़ी। वह धीरेसे उठा और तसबीरकी ओर अग्रसर हुआ। किसीने भी उस ओर लक्ष्य नहीं किया। सब लोग चित्रपरीक्षा देखनेमें व्यस्त हो रहे हैं। राजाने एक एक करके सब चित्र देखे। अंतमें उन्होंने एक चित्रको उठाकर अपने हाथमें लिया ही था कि इतनेमें 'चोर! चोर!' शब्दसे सभामंडप गूंज उठा। राजाने देखा कि दो पहरेवाले एक आदमीको बाँधे हुए लिये जाते हैं। पहारेवालोंने राजासे निवेदन किया कि "महाराज, यह मनोहरका चित्र चुरानेके लिए आया था।"

राजाने स्थिर दृष्टिसे छविनाथके आपत्तिग्रसित मुखका निरीक्षण किया। वह सिर झुकाये स्थिर भावसे खड़ा है। उनके चहरेपर भयका नाम भी नहीं है। दर्शक लोगोंके कोलाहलसे सभामंडप विकम्पित हो उठा। राजाके कटाक्षपातसे कुछ देरमें शान्ति स्थापित हुई।

राजा—(बंदीसे) तुमने महलमें क्यों प्रवेश किया?

बंदी—(निर्भय मनसे) चित्र देखनेके लिए।

राजा कुछ कहा ही चाहते थे कि इतनेमें मनोहरके पिताने आकर कहा—महाराज, यह वही चित्रकार है, जिसने मेरे लड़के मनोहरका चित्र अंकित किया था।

दर्शकोंमें सन्नाटा छागया—सभास्थल निस्तब्ध हो गया। लोग उत्कंठित होकर फैसला सुननेकी प्रतीक्षा करने लगे।

बंदी बंधनमुक्त कर दिया गया। राजाने सिंहासनसे उठकर रानीके हाथकी गूंथीहुई पुष्पमाला अपने कण्ठसे उतारकर छविनाथके गलेमें पहना दी।

जयका बाजा बज उठा। चिकके अंतरालसे विजयगीत सुनाई देने लगे। राजाके विचारसे सब लोग संतुष्ट हुए। केवल जिन लोगोंने विचार कराना चाहा था, वे ही गर्दन झुकाये बैठे रहे।

पुस्तकालय
इलाहाबाद

मधुस्रवा।

(१)

गुर्जर प्रदेशके अन्तर्गत कुसुम्भपुरके राजा बन्धुहित बड़े आनन्दसे राज्य करते थे। कुमारी मधुस्रवाकी सेवा शुश्रूषाने, सेनापति बलाहकके शत्रुशासक पराक्रमने और सभाकवि क्षेमश्रीके मधुर काव्यरसने राजाको सर्वप्रकारसे चिन्तामुक्त और आनन्दयुक्त कर रक्खा था।

मधुस्रवाकी शरीरलतिकामें लावण्यका ललित कुसुम खिल रहा था, चञ्चल और विशाल नेत्रोंमें शुभ्र दूधकी धाराके समान भोली चितवन खेल रही थी; लहराते हुए अतिशय काले बालों और लीलामय चंचल गतिसे वह काली घटाके बीचमें बिजलीके समान मालूम होती थी।

राजसभाका विशाल भवन समुद्रतटपर शोभा दे रहा था। वह सङ्गमर्मर आदि बहुमूल्य पाषाणोंसे बनाया गया था, उसकी दीवालोंपर तरह तरहके मणिमुक्ताजटित चित्र खिंचे हुए थे और उसके चारों ओर एक रमणीय उद्यान था। दक्षिणकी ओर विशाल समुद्र लहराता था, पूर्वकी ओर छोटीसी विशाखा नदी—जो कि आगे जाकर समुद्रमें मिली है—बहती थी, उत्तरकी ओर नगरसे लगाहुआ मेघमालाके समान धूम्रधूसर मुञ्जकेश पर्वत ऊंचा सिर किये हुए खड़ा था और पश्चिमकी ओर इलायचीकी लताओंसे आलिङ्गन करनेवाले चन्दन वृक्षोंका बगीचा था। समुद्रकी गर्जन, विशाखाकी कलकलध्वनि, मुंजकेशके वृक्षोंकी हरी हरी शोभा और उद्यानकी क्रीड़ा करती हुई सुगन्धित वायु राजसभाको बहुत ही मधुर बनाये रखती थी। साथ ही महाराजके समीप ही बैठी हुई मधुस्रवा अपनी रूपज्योतिसे उसे प्रकाशित किये रहती थी।

मधुस्रवाके रूप और कुसुम्भपुरके रचनासौन्दर्यसे बड़े बड़े वीरोंका हृदय आकर्षित होता था; परंतु पराक्रमी बलाहककी तरवारके भयसे सबको विमुख होना पड़ता था। राजा आनंदके साथ क्षेमश्रीके काव्य-रसका पान किया करते थे। मधुस्रवाका स्मरण करके जिस तरह बलाहककी तरवार भयंकर और तीक्ष्ण हो गई थी, उसी प्रकार मधुस्रवाका आश्रय पाकर क्षेमश्रीकी कविता भी सकलजनमनोहारिणी और मधुर हो गई थी।

शत्रुपर चढ़ाई करनेके लिए जाते समय बलाहक जिस करुण और प्रेम-व्याकुल दृष्टिसे मधुस्रवाके निकट बिदा मांगता था, उस दृष्टिसे वह मधुस्रवाके चरणोंपर कितने प्रेमपुष्प और कितने प्रार्थना-पल्लव चढ़ाता था; यह किसीसे छुपा न रहता था। शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके अन्तमें क्षेमश्रीकी कवितासे जो बन्दकमलके चारों ओर घूमते हुए भ्रमरों जैसी हर्ष और शोकसे भीगी हुई गुञ्जन ध्वनि निकलती थी, उससे मधुस्रवा समझती थी कि ये प्रेम और अव्यक्त व्याकुलताकी उच्छ्वासें मुझे ही लक्ष्य करके निकल रही हैं। जिस समय बलाहक सेनापति गर्वसे ऊँचा मस्तक किये हुए सभास्थलमें खड़ा होकर कहता था—"महाराज, आपके स्नेहकवचने मेरी बड़ी रक्षा की, मैं उसके प्रसादसे आज विजयी होकर आपके सन्मुख खड़ा हूं।" उस समय क्षेमश्री लज्जासे नीचा सिर कियेहुए कंपितकण्ठसे इस आशयका गीत गाता था-"अजी, मैं तुम्हारे प्रेमका बन्दी हूं।" जिस समय बलाहक शत्रुको राजाके सामने लाकर कहता था कि "महाराज, मैं इस दुर्जय शत्रुको बाँधकर लाया हूं, कहिए, इसको क्या सजा दी जाय?" उस समय क्षेमश्री आँखोंमें पानी भरकर करुणापूर्ण कण्ठसे कहता था—"बन्दीके बंधन छोड़ दो, उसे प्रेमके बंधनसे सदाके लिए बाँध लो।" बलाहक जब किसी शुभकार्यके प्रारंभमें देवदर्शन करनेके समान मधुस्रवाकी लावण्य-ललित कौमार-शोभाका एकाग्रदृष्टिसे पान करके लक्ष्यवेध करनेमें प्रवृत्त होता था तब क्षेमश्री अपनी पुष्पस्तबकके समान सुन्दर दृष्टिके द्वारा मधुस्रवाकी आरती उतारता था। इधर बलाहक निहार निहारकर हँसता था कि उधर देखते देखते क्षेमश्रीकी आँखोंमें नीर भर आता था।

(२)

मधुस्रवाके विवाहका समय आ गया। बलाहक उसके पाणि-ग्रहणकी अभिलाषासे बोला, "महाराज मैं अपने हृदयका रक्त बहाकर चिरकालसे

आपकी आज्ञाका पालन कर रहा हूं, आज उसके पुरस्कार देनेका दिन है।" क्षेमश्रीने हाथ जोड़कर कांपते हुए कण्ठसे डरते डरते कहा, "महाराज, मैंने अपनी छोटीसी शक्तिके अनुसार जीवनभर आपकी सेवा की है–आज उसका स्मरण करके प्रसाद देनेकी कृपा कीजिए।"

राजाको दोनों ही प्यारे हैं। क्षेमश्रीने केवल प्रीति दी है, परन्तु बलाहकने धन और प्राणोंकी रक्षा की है। उन्होंने संशय मिटाने और कर्तव्य-निर्णयकी आशासे मधुस्रवाकी ओर देखा। परन्तु वह दोनोंका ही प्रेमदृष्टिसे अभिनन्दन कर रही है, यह देखकर राजाने कहा, "धरणी और रमणीको वही पा सकता है, जो वीर हो। अतएव तुम दोनोंके बलकी परीक्षा होनी चाहिए।"

बलाहकका मुख आशासे खिल उठा और छाती फूल उठी। उसकी ओर देखकर मधुस्रवा कुछ मुसकराई; परन्तु ज्यों ही उसने क्षेमश्रीके मलिन मुखकी ओर देखा; त्यों ही वह मुसकराहट फीकी पड़ गई।

क्षेमश्रीने कहा, "महाराज, कवि प्रेम-सौन्दर्यके उपासक होते हैं और रमणी प्रेम चाहती है; अतएव हमारा प्रेम कितना गहरा है, इसकी परीक्षा होनी चाहिए।" मधुस्रवाके मधुर दृष्टिपातसे क्षेमश्रीका सुन्दर मुख विकसित होगया; बलाहक व्याकुल होकर राजाके मुँहकी ओर देखने लगा। महाराज बोले, "बलहीन जब स्वयं अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता, तब मेरे राज्यकी और कन्याकी कौन रक्षा करेगा?" बलाहकने म्यानसे तलवार निकाल ली और मधुस्रवाके स्मितमधुर मुँहकी ओर देखा। क्षेमश्री गाने लगा। उसका अभिप्राय यह था "प्रेमसे शत्रुओंको जीतूंगा और प्रेमके बलसे बली होऊँगा। विरोधविक्षुब्ध राज्य पानेकी अपेक्षा तो विरोधरहित वृक्षके नीचे निवास करना अच्छा है।" इस तरह जब एक अपने पक्षका समर्थन करके मधुस्रवाकी सदयदृष्टिका सौभाग्य प्राप्त करता था, तब वह प्रफुल्लित और दूसरा उदास हो जाता था। अन्तमें राजाने कहा, "तुम दोनोंमें जो बलवान् होगा, वही मेरी कन्याको प्राप्त कर सकेगा।" बलाहकने अपने सौ-भाग्यसे गर्वित होकर क्षेमश्रीकी ओर तुच्छ दृष्टिसे देखा। क्षेमश्रीने विनीत स्वरसे कहा, "अच्छा तो बल-परीक्षा ही होने दीजिए।" तब घमंडी बलाहकने तलवार लेकर क्षेमश्रीको सामने आनेके लिए ललकारा। क्षेमश्रीकी व्याकुल दृष्टि मधुस्रवाके नेत्रों पर जाकर ठहर गई।

कुछ समय पीछे मधुस्रवाने कहा, "इस तरहसे बलकी परीक्षा करना अन्याय होगा। क्योंकि एक तो जन्मभरसे शस्त्र चलानेकी शिक्षा पाया हुआ शस्त्रोपजीवी सेनापति है और दूसरा शस्त्रविद्यासे सर्वथा अपरिचित कवि है। इस प्रकारके असम युद्धमें बलकी अपेक्षा कौशल या चालाकीकी ही जीत होनेकी अधिक संभावना है। इसके सिवा शस्त्रयुद्धमें किसी एकके हत या आहत होनेका भी डर है और यह हमें अभीष्ट नहीं।" यह सुनकर बलाहकने मधुस्रवाकी ओर भर्त्सनासूचक दृष्टिसे देखा। राजाने कहा, "अच्छा तो बाहु-युद्ध होना चाहिए।" परन्तु मधुस्रवाने इसे भी ठीक न समझा। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि "कौन कितना बोझा उठा सकता है, यह देखकर बलकी जाँच की जाय।"

(३)

शरत्कालके सूर्यकी सुनहली किरणोंसे अभी सभाका आँगन अच्छी तरहसे व्याप्त न हुआ था कि सभाभवन जनसमूहसे खचाखच भर गया। वैतालिकने महाराजके आगमनकी घोषणा की। क्षेमश्रीने प्रतिदिनकी नाईं महाराजकी अभ्यर्थना करके एक गाना गाया; परन्तु आजका गाना बहुत ही संक्षिप्त और बहुत ही करुणापूर्ण था। नौबत बजने लगी। राजाकी आज्ञासे परीक्षा प्रारम्भ हुई।

बलाहक बड़े बड़े वजनदार पदार्थोंको उठाने लगा। एक दूसरेसे अधिक अधिक वजनदार पदार्थ उसके सामने लाये जाने लगे और वह उन्हें ऊपर उठा उठाकर फैंकने लगा। अन्तमें एक बड़ी शिलाको वह अपनी छातीकी ऊंचाई-तक ले गया—इससे आगे उसकी शक्तिने जवाब दे दिया।

अब क्षेमश्रीकी बारी आई। उसका सदा प्रफुल्लित रहनेवाला मुख आज शरत्कालके प्रभातके समान गंभीर सौन्दर्यसे परिपूर्ण था। जब वह बोझा उठानेके लिए आगे आया, तब सैकड़ों हजारों नेत्र उस असमर्थके ऊपर करुणा और कल्याण-कामनाकी वृष्टि करने लगे। क्षेमश्रीने एक बार समुद्रकी स्तब्ध और गंभीर मूर्तिकी ओर देखा, एक बार विशाखाकी ओर दृष्टि डाली, एक बार मुञ्जकेशपर्वतकी ओर निरीक्षण किया, एक बार एलालता-वेष्टित चन्दनवृक्षोंकी श्रेणीकी ओर निहारा—और अन्तमें मधुस्रवाकी ओर कई बार देखकर वह अपने आपको भूल गया। इसके बाद ही उसने पैरोंके पास

पड़ी हुई उस भारी शिलाको दोनों हाथोंसे उठाकर मस्तकके ऊपर स्थिर कर दिया !

क्षेमश्रीकी जीतसे सभामें हर्षका कोलाहल मच गया। सभाजनोंकी दृष्टिकी चोटोंसे बलाहकको अपनी हार हजार गुणी असह्य मालूम होने लगी। लज्जासे उसके मुँहपर पसीना आ गया, रँग उड़ गया, आँखें नीची हो गईं। राजाने कहा, "शाबास! क्षेमश्री शाबास! तुम्हारे प्रेमकी जीत हुई है। इस भारी वजनको अब ऊपर उठाये रहनेकी जरूरत नहीं है, इसे फेंक दो।"

जयसे उल्लसित हुए कविके कानोंमें राजाके उक्त वचनोंने प्रवेश नहीं किया। वह मधुस्रवाकी ओर एकटक दृष्टिसे देखता हुआ उस भारी वजनको ज्योंका त्यों ऊपर उठायेहुए स्तंभके समान निश्चल हो रहा। लोग चारों ओरसे कहने लगे, "फेंक दो, फेंक दो, शिलाको फेंक दो।" परन्तु कवि ज्योंका त्यों अचल रहा। उसके मुँह पर हँसी विराजमान थी, और आँखें उसकी मधुस्रवाके मुँह पर गड़ रही थीं। मधुस्रवा बोली, "कविके हाथसे शिलाको थामकर उतार लो।" यह सुनते ही कई लोगोंने शिलाको पकड़कर कविके हाथोंमेंसे खींचा। खींचते ही क्षेमश्रीका प्राणहीन शरीर पत्थरकी मूर्तिके समान पृथ्वी पर गिर पड़ा !

विजयोन्मत्त कविके इस प्रकार एकाएक प्राणहीन होजानेसे राजसभाके आनन्दकोलाहलके ऊपर मरणका एक अतिशय करुणाप्रद परदा पड़ गया। इधर मधुस्रवा भी अपने विजयी स्वामीकी इस महिमामय मृत्युसे हर्ष और शोकके मारे मूर्च्छित होकर शान्तिलाभ करने लगी।

विचित्र स्वयंवर।

(१)

लगभग तेरहसौ वर्ष पहलेकी बात है। अङ्गदेशमें सत्यसेन नामका राजा राज्य करता था। यह राजा अन्ध्र वंशका था। इसके पूर्वपुरुषोंने दक्षिणसे आकर अङ्गदेशमें राज्य स्थापित किया था। सत्यसेनने चम्पा नगरीमें राजधानी स्थापित करके अपने राज्यको उत्तरमें मिथिला तथा मत्स्यदेश

तक और दक्षिणमें गङ्गानदीके सुन्दर तटसे कलिङ्गके सघन वनपर्यन्त बढ़ा लिया था।

वह समय प्रभावशाली बौद्ध धर्म और निर्वाणोन्मुख वैदिक धर्मके संघर्षणका था। इस संघर्षणका ही शायद यह प्रभाव था कि उस समयके राजाओंको सबेरे तन्द्रा आती थी। प्रबल प्रतापी सत्यसेन रातको जागता था और दिनको सोता था। ठीक ही है, जिसमें साधारण जीव नींद लेते हैं, उसमें संयमी पुरुष जागरित रहते हैं! रौद्रमूर्ति राजा रातको तान्त्रिक बन जाता था और बड़े सबेरे वैदिक पूजापाठ समाप्त करके नौ बजेके पहले ही आँखे मूँदने लगता था। कोई कोई कहते हैं कि उस समय देशमें बौद्ध धर्मके अभ्युदयका वही असर था जो अफीमके नशेका होता है।

अब तक जो थोड़े बहुत ग्रन्थ, पत्र, शिलालेख, ताम्रशासन, दानपत्र आदि पाये गये हैं, उनसे इस बातका पता लगता है कि सन्ध्याके पहले ही सत्यसेनके हाथ, पैर, खड्ग और चाबुक आदि खुल जाते थे और दोषी निर्दोषी, धार्मिक अधार्मिक आदि सबहीके कन्धों और पीठोंपर विना किसी विचार और आपत्तिके पड़ने लगते थे।

सारी प्रजा थरथर कांपती थी।

सत्यसेनके और कोई सन्तान न थी; केवल एक कन्या थी। उसका नाम था मन्द्रा। वह धनुर्बाण लेकर घोड़ेपर चढ़ती थी और चाहे जहां, जब चाहे तब, घूमा करती थी। वन, पर्वत जङ्गल, मरुस्थल और श्मशान आदि सब ही स्थानोंमें उसकी अरोक गति थी। निशाना मारनेमें वह एक ही थी। पशु पक्षी, सिंह व्याघ्र, चोर डाकू आदि सब उसके मारे काँपते थे।

मन्द्राका शरीर कृश था। उसके भ्रमर सरीखे काले काले बाल नितम्ब-देशसे नीचेतक लहराते थे। बड़ी बड़ी और काली आँखोंके बीचमें उसकी तीक्ष्ण दृष्टि स्थिर रहती थी। षोड़शी गौरीके समान वह भुवनमोहिनी थी; परन्तु उसके मृणालके समान कोमल हाथ पत्थरसे भी अधिक कठोर थे। वह हरिणीके समान चञ्चल और वायुके समान शीघ्रगामिनी थी।

मन्द्राके स्वयंवरकी कई बार चर्चा उठी; परन्तु दो सौ योजनतककी दूरीके किसी भी वीरपुरुषका यह साहस न हुआ कि उसके साथ पाणिग्रहण करनेके लिए उद्योग करे।

केवल इतना ही नहीं कि वह किसीको पसन्द न करती थी–साथ ही वह समझती कि सब ही लोग भयानक चोर लंपट और डाकू हैं। इस बातकी मनाई न थी कि कोई उसके राज्यमें आवे जावे ही नहीं। नहीं, जिसको आना जाना हो खुशीसे आवे जावे और वहां रहे; परन्तु कोई विवाहकी चर्चा न करे। बस, अङ्गराज्यमें सबसे अधिक भयंकर बात यही थी।

राजा सत्यसेन भी मन्द्रासे डरता था। देशके दूसरे राजा और सारी प्रजा भी उससे भयभीत रहती थी। तब उसके विवाहकी चर्चा कौन उठावे? मन्द्रा कुमारी रह गई—उसका विवाह न हुआ।

मन्द्राकी माता न थी। माताकी मृत्युके बाद पिताका सारा भार उसने उठा लिया था। इस तरह वह अपूर्व लड़की उस समय राजकार्यका भार, यौवनका भार, सुखदुःखकी स्मृतिका भार, ज्ञानका भार और धर्मका भार लेकर अपने जीवनके पथमें अकेली खड़ी थी।

राजसभाके विशाल भवनमें आज बहुतसे मन्त्री, बड़े बड़े राजकर्मचारी और मित्रराज्योंके कई राजकुमार उपस्थित हैं। मन्द्रा महाराजके सिंहासनके पीछे बैठी हुई है। एक ओर कर्ण सुवर्णके राजपुत्र कुमार नायकसिंह ऊंची गर्दन किये हुए उस अद्भुत और अपूर्व बालिकाके रूपको देख रहे हैं। नायकसिंह सुन्दर सुसज्जित और सुवीर हैं। वे मन्द्राके पाणिग्रहणकी ही इच्छासे चम्पानगरीमें आये हैं।

एक सप्ताहके बाद अमावास्या है। इसलिए कालीपूजाके और निमंत्रण आदिके विषयमें विचार हो रहा है। सबहीकी यह राय हुई कि पूर्वपद्धतिके अनुसार अङ्गदेशमें कालीपूजा अवश्य होनी चाहिये।

राजा सत्यसेन बोले, "कुमारी मन्द्रासे भी तो पूछ लेना चाहिये।"

मन्द्रा निष्कंप और स्थिर दृष्टिसे धरतीकी ओर देख रही थी और किसी गहरी चिन्तामें डूब रही थी। धीरे धीरे सबकी आँखें झपने लगीं। राजाको, मन्त्रियोंको और प्रजाके लोगोंको–सबको तन्द्रा आने लगी।

मन्द्राके निद्रारहित नेत्रोंको भी तन्द्राने घेर लिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी आँखें झपने लगीं।

इसी समय उस विशाल सभाभवनके द्वारपर एक भिक्षुक आकर खड़ा हो गया।

(२)

भिक्षुकका न सिर मुँड़ा था और न उसके हाथमें कमण्डलु था। एक सफेद चद्दरसे उसका सारा शरीर ढँका हुआ था, इसलिए यह न मालूम होता था कि वह बालक है या युवा, मोटा ताजा है या दुर्बल।

उसकी दृष्टि वैराग्यपूर्ण थी और आकार रहस्यमय था। उसके सिरके बाल कुछ कुछ जटाओंका रूप धारण कर रहे थे। उसके मोतियोंके समान दाँतोंके बीचमें तुषार जैसी हँसीकी रेखा झलकती थी और प्रशस्त ललाटमें चिंताकी कुछ कुछ सिकुड़न पड़ रही थी। उसका रँग उज्वल और प्रकाशमान् था।

भिक्षुने धीरे धीरे भीतर पहुँच कर कहा, "सबका कल्याण हो।"

शब्दके होते ही उस विशालभवनके हजारों तन्द्रापूर्ण नेत्र उसके ऊपर जा पड़े।

निद्रामें एकाएक बाधा पड़ जानेसे राजा सत्यसेनको बड़ा ही क्रोध आया। वे बोले "यह आदमी चोर है।"

भिक्षुने दोनों हाथ उठाकर कहा, "आपका कल्याण हो।"

तब मन्द्राने पिताके कानमें कुछ कहकर, सर्पिनीके समान क्रुद्ध होकर पूछा, "तुम किस राज्यके प्रजाजन हो?"

भिक्षु—विश्वराज्यके।

मन्द्रा—मालूम होता है कि तुम कोई स्वांगधारी डांकू हो।

भिक्षु—कल्याण हो।

मन्द्रा—कल्याण कौन करेगा?

भिक्षु—जीव अपना कल्याण आप ही करता है।

मन्द्रा—मैं तुम्हारा परामर्श (सलाह) रूप ऋण नहीं लेना चाहती।

भिक्षु—मैं ऋण नहीं देता, दान करता हूं। मैं देखता हूं कि इस विशाल राज्यमें शक्तिपूजाकी तैयारी हो रही है जो कि बहुत ही घृणित और हत्याकारी कार्य है। यह सृष्टिकी बाल्यावस्थाकी अज्ञानजन्य क्रियाके सिवा और कुछ नहीं है। आप ज्ञान लाभ करके इसे छोड़ दें।

प्रधान मन्त्री बोला, "यह कोई बौद्ध भिक्षु है।" सेनापति रुद्रनारायणने कहा, "इसको बाँधकर शूली पर चढ़ा देना चाहिए।"

मन्द्रा क्रोधसे जल उठी। उसने कठोर शब्दोंमें कहा—"कालीपूजा अवश्य होगी और उसमें सैकड़ों हजारों जीवोंका बलि दिया जायगा। क्या इससे तुम्हारी कुछ हानि है? और क्या तुम जैसे क्षुद्र पुरुषोंमें उसके रोकनेकी शक्ति है?"

राजा बहुत ही प्रसन्न होकर हँसने लगे। लोगोंने सोचा था कि मन्द्रा कालीपूजाके विषयमें विरोध करेगी; परन्तु उन्होंने देखा कि एकाएक इस रुकावटके आजानेसे उसका विचार बदल गया। मन्द्राका स्वभाव ही ऐसा था।

भिक्षु बड़े अभिमानके साथ ऊंचा मस्तक करके मन्द्राके प्रज्वलित नेत्रोंकी ओर स्थिर भावसे देखने लगा और बोला—"राजकुमारी मन्द्रा! इस समय मैं तुम्हें ही काली समझता हूं। कहो, कितने हजार बलिदानोंसे तुम तृप्त होओगी?"

मन्द्रा—तू देवद्वेषी और दुराचारी है, इस लिए मैं पहले तेरी ही बलि लेकर तृप्त होऊंगी।

भिक्षु—यदि इस क्षुद्र जीवके बलिदानसे तुम्हारे और तुम्हारी प्रजाके हृदयमें करुणाका सञ्चार हो, तो मैं तैयार हूं। यह ठीक है कि दुर्दमनीय प्रकृतिकी संहारशक्तिको रोकनेका बल मुझमें नहीं है; तो भी यदि प्रकृति चाहे, तो वह स्वयं उसे रोककर संसारको आनन्दमय बना सकती है। इसलिए मैं उसे उत्तेजित या उद्दीपित करनेके लिए तत्पर हूं।

मन्द्रा—किस उपायसे?

भिक्षु—केवल निमित्त बनकर अर्थात् सेवा करके, ज्ञानका प्रचार करके, और संयमकी शिक्षा देकरके। कुमारी, यह विशाल राज्य पतनोन्मुख हो रहा है। जब राजाके हृदयमें दया नहीं है और वह किसीको आत्मत्याग करना नहीं सिखलाता; तब तुम निश्चय समझो कि एक राजा मिटकर हजारों राजा हो जायँगे और देशमें राष्ट्रविप्लव हो जायगा। जब धर्मकी जलती हुई आग राजसिंहासनसे भ्रष्ट होकर अन्य आधार ग्रहण करती है और उस महान् विप्लवके समय करुणा, स्नेह, पवित्रता, साम्य, शान्ति और प्रीति आदि सद्गुण नहीं होते हैं, तब उसमें सब ही भस्म हो जाते हैं। इस बड़े भारी राज्यमें पापका प्रवेश हो गया है। यहां मद्य-मांसका

श्राद्ध और सतीत्व धर्मका सत्तानाश किया जाता है, तथा निःसहाय और मूक प्राणियोंको बलि चढ़ाकर पापको सहारा दिया जाता है । कुमारी मन्द्रा, कालीपूजाकी फिरसे प्रतिष्ठा कराके ये सब लोग बिनासमझे बूझे घोर तामसिक वृत्तिको अपनी ओर खींचनेका उद्योग कर रहे हैं। तुम्हें चाहिये कि इस जीवबलिकी जगह आत्मबलिकी शिक्षा देकर पूजाप्रतिष्ठा करो । यह आत्मबलि ही सच्ची कालीपूजा है। यह बौद्ध भिक्षु भी तुम्हारी इस पूजाका प्रसाद लेकर खायगा ।

यह व्याख्यान सुनते सुनते बहुतसे लोग फिर ऊँघने लगे । राजा साहबका उनमें पहला नम्बर था। मन्द्राने कहा, "यह आदमी पागल है, इसको देवदत्त-पुजारीके घरमें कैद करके रक्खो ।"

(३)

बूढ़ा देवदत्त पुजारी घोर शाक्त था । उसका एक वामनदास नामका पुत्र था, जिसकी उमर लगभग १५ वर्षके होगी । वह एक बिल्ववृक्षके नीचे बैठकर वेदपाठ करता था। उसकी बूढ़ी माता हरिनामकी माला जपा करती थी। पुजारीके घरमें इन तीन जनोंके सिवा एक सत्यवती नामकी लड़की और थी ।

सत्यवती देवदत्तकी कन्या है; परन्तु कैसी कन्या है यह सबको मालूम नहीं । कई लोगोंका कथन है कि वह किसी क्षत्रियकी कन्या है । जब वह छोटी सी थी, तब देवदत्त उसे मिथिलासे ले आया था । कोई कोई कहते हैं कि एक बार देवदत्त माघी पूर्णिमाके मेलेमें गया था और वहां इसे गंगा नदीके तटपर अकेली पड़ी देखकर उठा लाया था । सत्यवतीकी अवस्था इस समय सत्रह वर्षकी है ।

सत्यवती बहुत ही सुन्दरी है । उसका मुखकमल सदा ही प्रफुल्लित रहता है । घरके कामकाजोंमें वह बड़ी चतुर है । सेवाशुश्रूषा करना ही उसका व्रत है। उसी व्रतमें उसका जीवन और यौवन वर्द्धित और पालित हुआ है ।

सेनापति रुद्रनारायणसिंह हाथमें नंगी तलवार लिये हुए देवदत्तके घर पहुंचा । कैदी भिक्षु उसके साथ था ।

देवदत्त उसे देखकर बाहर आंगनमें आ खड़ा हुआ ।

सेनापति—राजकुमारी मन्द्राने आज्ञा दी है कि यह बौद्धभिक्षुक आपके यहां सात दिन तक कैद रहे।

देवदत्त—इसके लिए कोई पहरेदार भी रक्खा जायगा ?

सेनापति—न।

देवदत्त—तब तो बड़ी मुश्किल होगी ! यदि कहीं भाग गया तो ?

सेनापति—यदि भाग जायगा, तो इसके साथ आपका यह जटाधारी मस्तक भी चला जायगा ! इसलिए इसे किसी तरह अपने तन्त्रमन्त्रबलसे बाँधकर रखिएगा।

सेनापति चला गया। देवदत्तने भिक्षुकी ओर देखा। उस देवतुल्य सुन्दर युवाकी मूर्ति देखकर उसे विश्वास होगया कि भिक्षु भाग जानेवाला आदमी नहीं। इसके बाद उसने कुछ सोचकर पुकारा–"सती !"

सत्यवती झरोखेमेंसे देख रही थी। शीघ्र ही बाहर होकर नीचा सिर किये हुए बोली, "कहिए, क्या आज्ञा है ?"

देवदत्त—यह बौद्ध भिक्षु राजकुमारीकी आज्ञासे सात दिनके लिए अपने यहां कैद रक्खा गया है। इसलिए इसकी देखरेख रखनेका भार तुम्हें सोंपा जाता है।

सत्यवतीने हँसकर कहा—अच्छा, किन्तु यदि यह भाग गया तो ?

देवदत्त—यह वामनदासके बराबर न दौड़ सकेगा। उसको जरा मेरे पास बुला लाओ।

पिताकी आज्ञासे वामनदासने रातको पहरा देना स्वीकार किया। दिनकी देखरेखका भार सत्यवती पर रहा।

भाई-बहिनको भिक्षुकी देखरेखका भार सोंपकर देवदत्त मन्त्र जपनेके लिए फिर घरमें चला गया और वामनदास अपने वेदपाठमें लग गया। सत्यवती साहस करके भिक्षुके सामने खड़ी हो गई और बोली, "तुम्हें मैं क्या कहकर पुकारा करूं ?"

भिक्षु—कुमारी, मैं तुम्हारी हथेली देखना चाहता हूं।

सत्यवतीने आदरपूर्वक अपनी हथेली आगे कर दी। भिक्षु उसे अच्छी तरह देखकर विस्मयसागरमें डूब गया। ऐसा मालूम होता था कि उसे कोई पुरानी बात, या कोई पुराना टूटा हुआ बन्धन, या कोई

लुप्त हुई स्मृति याद आगई है। उसने बहुत ही दुःखपूर्णस्वरसे कहा,—"अमिताभ !"

सत्यवती—तुमने यह क्या सम्बोधन किया ?

भिक्षु—तुम मुझे 'शरण भैया' कहकर पुकारा करो।

सत्यवतीने चौंककर पूछा, "क्या तुम मेरे शरण भैयाको जानते हो ?"

भिक्षु—यदि जानता होऊं, तो क्या आश्चर्य है ?

सत्यवती—मैं उन्हें स्वप्नमें देखा करती हूं। गङ्गानदीके उत्तरमें हिमालयसे सटा हुआ एक अरण्य है। सीताका जन्म वहीं हुआ था। बहुत ही सुहावना वन है। वहां सोनेके पक्षी तहां जहां वृक्षों वृक्षों पर उड़ा करते हैं और ऋषियोंके समान सरल स्वभावके मनुष्य वहां निवास करते हैं। उसी वनमें मेरे शरण भैया रहते हैं।

भिक्षु—नहीं, मैं उस वनमें नहीं रहता। वह वन तो इस समय व्याघ्र और रीछोंसे भरा हुआ है। मैं एक बौद्ध भिक्षु हूं। देश देशमें धर्मप्रचार करता हुआ घूमा करता हूं।

सत्यवती—पर यह बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारा और उनका नाम एकसा मिल गया। मेरे शरण भैया, भिक्षु नहीं—राजपुत्र हैं।

भिक्षु—स्वप्नके राजपुत्रकी अपेक्षा जाग्रदवस्थाका भिक्षु अच्छा। क्योंकि तुम्हारा यह भाई सत्य है और वह स्वप्नका भाई मिथ्या है। सती बहिन, तुम स्वप्नको छोड़कर सत्यका अवलम्बन करो।

सत्यवती मन्त्रमुग्ध सरीखी हो रही। उसने स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा, "अच्छा।"

(४)

राज्यके खजांची लाला किशनप्रसादने मन-ही-मन सोचा कि राजकुमारी मन्द्राकी इस अद्भुत आज्ञाका कोई न कोई गूढ़ आशय अवश्य है। एक सुपुरुष युवाको सत्यवतीके समान सुन्दरी युवतीके घर कैद करनेकी कूटनीतिको लालासाहब तत्काल ही समझ गये। लालासाहब जातिके क्षत्रिय हैं। पुराने समयमें कुछ क्षत्रिय युद्धव्यवसाय छोड़कर लिखनेका काम करने लगे थे। कहते हैं कि पीछे उन्हींके वंशका नाम कायस्थ पड़ गया। गरज यह कि लाला साहब कायस्थ हैं। आपकी उमर इस समय ३० वर्षके लगभग है;

परन्तु अभीतक आपका विवाह नहीं हुआ। आप शक्तिकी पूजा करते हैं। रंग आपका काला है; परंतु आप समझते हैं कि काला होने पर भी मैं सुन्दर हूं। शरीरकी सजावट पर और कपड़े-लत्तों पर आपका बहुत ध्यान रहता है। गुपचुप हँसना, चोरी करके सिरजोरी करना, बातोंमें जमीन और आसमानके कुलाबे मिला देना, आदि आपके स्वभावसिद्ध गुण हैं। राज्यमें आप एक पराक्रमी वीर समझे जाते हैं और धन दौलत भी सब आपके हाथ रहती है, इसीलिए लोग आपको सेनापति और मन्त्रीकी अपेक्षा भी अधिक मानते हैं। आप राजकुमारी मन्द्राके सिवा और किसीको नहीं डरते। क्योंकि आपकी शक्ति, बुद्धि, चालाकी आदि सब ही उसके सामने व्यर्थ हो जाती है।

लाला किशनप्रसाद देवदत्तके पड़ौसहीमें रहते हैं। सत्यवतीका अपूर्व रूप और विमल चरित्र देखकर आपका मन आपके हाथमें नहीं रहा है। किन्तु जिसके कुल और शीलका कुछ पता नहीं, ऐसी युवतीके साथ विवाह करना कुलीनोंकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध है, यह सोचकर आपने अन्तमें यह निश्चय किया है कि किसी तरहसे सत्यवतीको हरण करके उसके साथ गान्धर्वविवाह कर लूँ।

लालासाहबने बड़ी मुश्किलसे सत्यवतीके हृदयमें एक शरत्कालके बादलके टुकड़ेकी सृष्टि कर पाई है। सत्यवती सोचती होगी कि किशनप्रसाद मुझे चाहते हैं। जब आपने उसका यह अभिप्राय समझनेकी कोशिश की, तब आपके चित्त पर एक आशाकी रेखा खिंच गई। थोड़े दिनोंमें यही रेखा एक प्रकारके आन्दोलनसे सारे हृदयमें व्याप्त होगई और फिर वह इतनी प्रबल हो गई कि कुछ दिन पहले जब आपने एकबार सत्यवतीको अकेली पाया, तब आप अपने निःस्वार्थ और हताश प्रेमका परिचय देकर रोनेतक लगे! बोले कि "यदि मेरा तुम्हारे साथ विवाह न होगा, तो मैं इस संसारको छोड़कर किसी अज्ञात तीर्थ पर जाकर मर जाऊंगा और मरके भूत होऊंगा।" इस भूतकी भीतिसे और करुणासे अभिभूत होकर उस दिन सत्यवतीने कह दिया कि, "अच्छा आप यह बात पिताजीसे कहना।"

लालासाहब अपने मनोरथके सिद्ध होनेकी आशासे आजकल खूब बन ठनके रहते हैं; परन्तु इतनेमें बीचहीमें बखेडा खड़ा होगया। उन्होंने देखा कि बखेड़ेके सम्मुख बौद्ध भिक्षु और पीछे राजकुमारी मन्द्रा खड़ी है।

चतुर किशनप्रसादने जहां तहां यह गप्प उड़ा दी कि बौद्ध भिक्षु बड़ा भारी योगी है; उसके योगबलकी प्रशंसा नहीं हो सकती । बस, फिर क्या था, झुंडके झुंड स्त्री पुरुष देवदत्तके घर आने लगे। इसके सिवा लालासाहब कभी कभी मौका पाकर सुन्दरी कुमारिकाओंको संन्यासनियोंके वेषमें और रूपवती वेश्याओंको गृहस्थोंकी कन्याओंके वेषमें भी वहां भेजने लगे–इसलिए कि किसी तरह भिक्षुको विचलित कर दूं; परन्तु वे सब ही विफलमनोरथ होकर लौटने लगीं। उस बौद्धभिक्षुके अजेय हृदय-दुर्गका एक अणु भी विचलित न हुआ। लालाजीकी झूठी गप्प सच हो गई। उसका असीम करुणामय मुख देखकर और उसकी स्नेहमयी वाणी सुनकर सैकड़ों स्त्री पुरुष बौद्धधर्म ग्रहण करने लगे।

यह बात धीरे धीरे राजकुमारीके कानों तक भी जा पहुंची। कृष्ण त्रयोदशीकी संध्याको उसने सेनापतिको आज्ञा दी कि "किशनप्रसादको इसी वक्त मेरे सामने ले आओ।"

(५)

तत्काल ही किशनप्रसाद हाजिर किया गया। सेनापतिको वहांसे चले जानेका इशारा करके राजकुमारी मन्द्राने गरज करके कहा "किशनप्रसाद, सच सच कहो, तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?" किशनप्रसादने हाथ जोड़ कर कहा "राजकुमारी, आप सबकी माताके तुल्य हैं और मैं आपकी सन्तान हूँ। इसलिये मैं आपसे कुछ छुपाना नहीं चाहता। सत्यवती पर मेरा अनुराग है—मैं उसे हृदयसे चाहता हूँ; परन्तु मालूम होता है कि आपने इसे न जानकर इस दरिद्रके रत्नको किसी गूढ़ उद्देश्यसे दूसरेके हाथ देनेका संकल्प कर लिया है।"

मन्द्रा—पापी, तू चरित्रहीन तस्कर है। तेरे मुँह पर अनुराग और प्रेमकी बात शोभा नहीं देती।

किशनप्रसाद (विनीतभावसे)—मैंने धीरे धीरे अपना चरित्र सुधार लिया है। अब मैं सत्यवतीको ब्याहके किसी अन्य राज्यमें जाकर रहने लगूंगा !

मन्द्रा—वाह, कैसा निस्वार्थ भाव है ! अरे कृतघ्न, तू राजवंशके अन्नसे पलकर अब क्या विद्रोही बनना चाहता है ?

किशन०—विद्रोही कैसा ? मैंने ऐसा कौनसा काम किया है ?

मन्द्रा—तू भिक्षुको ललचाकर भ्रष्ट करना चाहता है और इसके लिए अतिशय निन्द्य काम कर रहा है। फल इसका यह हुआ है कि देशमें बौद्ध धर्मका प्रचार बढ़ता जाता है।

किशन०—मेरे ललचानेका इसके सिवा और कोई उद्देश्य नहीं कि भिक्षुका मन सत्यवतीसे हटकर किसी दूसरी ओर लग जावे। और आप जो बौद्धधर्मके प्रचारकी बात कहती हैं, सो भिक्षुको यहांसे निकाल देनेसे ही सारा बखेड़ा मिट जायगा। उसके जाते ही बौद्धधर्मकी जड़ उखड़ जायगी। राजकुमारी, अब भी समय है–कुछ उपाय कर दीजिए, नहीं तो भिक्षु सत्यवतीको लेकर भाग जायगा।

मन्द्रा—तू झूठ बकता है।

किशन०—नहीं, मैं बिलकुल सच कहता हूं।

मन्द्राकी अवाज लड़खड़ा गई। इसके पहले अङ्गराज्यकी राजकुमारीकी कठोर आवाज किसीने भी लड़खड़ाती हुई न सुनी थी।

मन्द्रा—किशनप्रसाद, क्या यह बात सच है?

किशन०—बिलकुल सच है। सत्यवती भिक्षुको अपना हृदय सोंप रही है।

मन्द्रा—और भिक्षु?

किशन०—वह तो कभीका सोंप चुका है।

जिस तरह हवाके तेज झोकेसे वृक्षमेंसे सनसन करती हुई आवाज निकलने लगती है, उसी तरहकी दुःखभरी आवाजसे मन्द्राने कहा—"क्या सोंप चुका है?"

किशन—हृदय।

मन्द्रा—पापी क्या तू जानता है कि हृदय किस तरह सोंपा जाता है?

किशनप्रसादने मन–ही–मन कहा—हां, खूब जानता हूं। अब केवल उपाय निकलनेकी देरी है कि फिर तो काम सिद्ध ही समझिए। इसके बाद उसने प्रकाश्यरूपसे कहा, "राजकुमारी, आप मेरी बातपर तब विश्वास करेंगी, जब आज या कल आप सुनेंगी कि भिक्षु भाग गया। अब इस सेवकके लिए क्या आज्ञा होती है?"

मन्द्रा—तुम उसे रोकना और दोनोंको बाँध करके ले आना। जरूरत हो, तो सेनापतिकी भी सहायता लेनेसे न चूकना, अंगराज्यसे एक कुमारीको लेकर–

किशन०—भागना—

मन्द्रा—बड़ा भारी अपराध है। उसको कठिन दण्ड देना चाहिए।

किशनप्रसाद चला गया।

आधीरातका वक्त है। भिक्षु देवदत्तके घर ध्यानमें मग्न हो रहा है। इतनेमें सत्यवतीने धीरेसे आकर किवाड़ खोले और दुःखभरे कण्ठसे कहा, "शरण भैया!"

भिक्षुने आँखें खोलकर कहा, "क्यों सती?"

सत्यवती—शरण भैया, मैं तुमसे एक बात न कह पाई थी। आज किशनप्रसाद मुझे तुम्हारे पाससे छीन ले जायगा।

भिक्षु—(विस्मित होकर) इसका क्या मतलब है? यह मैं जान गया हूं कि किशनप्रसाद दुराचारी पुरुष है; परन्तु उसे तुम्हें छीन ले जानेका क्या अधिकार है?

सत्यवती—किशनप्रसाद मेरे साथ विवाह करना चाहता था; परन्तु उसकी इच्छा पूरी न हुई, इसलिए आज रातको वह मुझे जबर्दस्ती ले जायगा। इस संकटसे बचनेका सिवा इसके और कोई उपाय नहीं दिखता कि इस देशको ही छोड़ देना। भैया, इस देशमें धर्म नहीं है। मैं तो अब संन्यासिनी हो जाऊंगी और बुद्ध भगवान्‌की शरण लेकर घरघर भीख मांग कर अपना जीवन व्यतीत करूंगी।

भिक्षुने उस कोठरीके टिमटिमाते हुए दीपककी ओर देखकर एक लम्बी सांस ली और कहा, "अच्छा, भगवान्‌की इच्छा पूर्ण हो। संन्यासिनी बहिन, तो अब तुम तैयार हो जाओ। यह तो तुम्हें मालूम है कि जंगल बड़ा दुर्गम है। क्या तुम मेरे साथ दौड़ सकोगी?"

सत्यवतीके हृदयमें एक अलक्षित शक्तिका संचार हो रहा था। उसने आनन्द और उत्साहसे कहा, "जंगल क्या चीज है, मैं नदी और पर्वतोंको भी सहज ही पार कर जाऊंगी।"

सारा नगर घोर निद्रामें मग्न था। चारों ओर सन्नाटा खिंच रहा था। रास्तोंपर एक भी मनुष्य न दिखलाईदेता था। भिक्षु सत्यवतीके साथ देवदत्तके घरसे चल दिया।

(६)

रात ढल चुकी थी। राजकुमारी मन्द्रा चम्पागढ़के सिंहद्वारको पार करके ठहर गई। वह एक शीघ्रगामी घोड़े पर सवार थी और हाथमें धनुर्बाण लिये

थी। उसने कुमार नायकसिंहको पुकार कर कहा, "कुमार, आप अङ्गराज्यके पुराने मित्र हैं। इस समय आपको मेरी एक बात माननी होगी।"

कुमार नायकसिंहने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिए तैयार हूं।"

मन्द्रा—राजधानीसे बाहर जानेके केवल दो ही रास्ते हैं। अभी थोड़ी ही देर पहले बौद्ध भिक्षु कुमारी सत्यवतीको लेकर भागा है। यह तो नहीं मालूम कि वह किस रास्ते गया है; परन्तु गया है इन्हीं दो रास्तोंमेंसे किसी एक रास्तेसे। अभी घड़ीभर पहले ही किशनप्रसादने मुझे इसकी सूचना दी है। अतएव राजधर्मके अनुसार उन दोनोंको रोकना हमारा कर्तव्य है। एक रास्तेसे तो मैंने किशनप्रसाद खजांची और रुद्रनारायण सेनापतिको चार होशयार सैनिकोंके साथ भेज दिया है, अब एक रास्ता और बाकी है। आपकी शूरवीरताकी मैंने बहुत प्रशंसा सुनी है, इस लिए मैं चाहती हूं कि इस दूसरे रास्तेसे आप ही जावें और भिक्षु तथा सत्यवतीको कैद कर लावें। आप घोड़े पर सवार होकर अकेले ही जाइए। जरूरत होगी तो मैं भी आपकी सहायता करूंगी।"

कुमार नायकसिंहने एड़ लगाकर अपना घोड़ा छोड़ दिया। मन्द्राको घबड़ाई हुई और चिन्तित-सी देखकर नायकसिंहके मनमें बारबार यह प्रश्न उठने लगा कि बौद्ध भिक्षुके मार्गमें मन्द्रा क्यों ?

काली रात है। नैश वायु दूरवर्ती पर्वतमालासे टकराकर अरण्यको व्याप्त कर रही है। तारे छिटक रहे हैं। पूर्वकी ओरके आकाशमें बादलोंके कई सफेद सफेद टुकड़े इधर उधर बिखर रहे हैं।

लगभग एक कोस चलकर सत्यवतीने कहा, "शरण भैया, मालूम होता है कि पीछेसे अपने पकड़नेके लिए घुड़सवार आ रहे हैं।"

भिक्षुने हँसकर कहा, "सत्यवती, मैं अपने जीवनमें ऐसे बहुतसे घुड़सवार देख चुका हूं—उनका मुझे जरा भी भय नहीं; भय है तो तुम्हारी केवल रक्षाका। इस समय बस एक ही उपाय है कि इस ऊंचे पर्वतकी बायीं ओरसे एक दूसरा रास्ता गया है, तुम उसी रास्तेसे भागो। मैं उन सबको हटाकर तुम्हारे पास आ जाऊंगा।

सत्यवती भयके मारे कुछ न कह सकी और बतलाये हुए रास्तेसे भागी। थोड़ी ही देरमें चार सवारोंने और सेनापति रुद्रनारायणने आकर भिक्षुको घेर लिया। केवल किशनप्रसाद घोड़े पर चढ़े हुए खड़े रहे।

पांचों सवार तलवारें खींच कर भिक्षुको पकड़नेकी चेष्टा करने लगे।

इसी समय किशनप्रसादने चिल्लाकर कहा, "और सत्यवती कहां है? वह जरूर ही किसी दूसरे रास्तेसे भाग गई है!"

किशनप्रसादको उसी रास्तेसे जाते देखकर भिक्षुने गर्ज कर कहा, "खबरदार पापिष्ठ, खड़ा रह, अपने हाथसे अपनी मौतको मत बुला।"

उसी समय बातकी बातमें भिक्षुने लपककर एक योद्धाके हाथसे तलवार छीन ली और फिर वह रणस्थलमें अड़ गया। अपने विलक्षण हस्तकौशल और असीम पराक्रमसे उसने चार योद्धाओंको बातकी बातमें परास्त और निरस्त कर दिया। धराशायी योद्धाओंमेंसे रुद्रनारायणसिंह भिक्षुके सामने बहुत देर तक टिका रहा। अन्तमें उसने कहा, भिक्षु, तुम्हारा वीरत्व और युद्धकौशल अपूर्व है। बौद्ध धर्म छोड़कर यदि तुम क्षत्रिय धर्म ग्रहण करते, तो अवश्य ही किसी विशाल राज्यको प्राप्त कर सकते।"

इसके उत्तरमें भिक्षुने कहा, "वीर, मैं इस समय तो धर्मकी रक्षाके लिए अवश्य ही क्षत्रिय हूं; परन्तु कल फिर गलीगलीमें भटकनेवाला भिखारी हो जाऊंगा। इस समय डाकुओंके हाथसे इस भिखारीको अपने एक मात्र धन—"

इसी समय अन्धकारमेंसे किसी स्त्रीके कण्ठका शब्द सुन पड़ा। भिक्षुने देखा कि थोड़ी ही दूरपर राजकुमारी मन्द्रा धनुर्बाण लिये हुए खड़ी हैं।

मन्द्राने कठोर स्वरसे कहा, "भिक्षु, अपने धनरत्नके उद्धार करनेके पहले तू मेरे इस बाणसे अपना उद्धार करनेकी चेष्टा कर।"

मन्द्राका निशाना अचूक था। उसका तीक्ष्ण बाण भिक्षुका बायाँ पैर पार करता हुआ निकल गया!

उस समय आकाश सघन मेघोंसे आच्छादित होता जाता था। ठंडी हवा खूब तेजीसे चल रही थी। धीरे धीरे अन्धकार और और सघन होने लगा। मन्द्रा भिक्षुको न देख सकी। वह एक बार केवल यही सुन सकी कि, "सत्यवती, तुम निर्दोष हो। तुम्हारा कल्याण हो।" भिक्षुका यह स्वर बड़ा ही करुण और दुःखपूर्ण था।

इसी समय बिजलीकी कड़कसे वनपर्वत कांप उठे।

मन्द्राने अपने धनुर्बाणको फेंक दिया। वह उस गहरे अन्धकारमें पागलिनीके समान पुकारने लगी, "तुम कहां हो! भिक्षु, तुम कहां हो!"

किन्तु भिक्षुका कहीं पता न था। उस झञ्झावायुसे क्षुब्ध अरण्यमें केवल यही प्रतिध्वनि सुन पड़ी "भिक्षु, तुम कहां हो!"

(८)

कुमार नायकसिंह आकाशकी अवस्था देखकर घोड़ेसे उतर पड़े और एक बड़े भारी पत्थरके सहारे खड़े हो रहे। इस समय उनका चित्त उदास था। इतनेमें ही बिजली चमकी। उन्होंने देखा कि सत्यवती उनके पास-हीसे भागी जा रही है। वे उसे रोक कर बोले,—" सुन्दरी, मैंने एक वीर-वंशमें जन्म लिया है। अपने जीवनमें मुझे बुरे दिन और भले दिन, रणभूमि और रंगभूमि सब ही कुछ देखनेका अवसर मिला है। इससे कहता हूं कि इस अँधेरी रातमें यह कंटकमय और पथरीला रास्ता तुम जैसी अबलाओंके लिए घरका आँगन नहीं है। तुम भागनेका प्रयत्न मत करो।"

कुमार नायकसिंहको अङ्गदेशमें प्रायः सब ही जानते थे। सत्यवती भी उन्हें पहचान गई, इसलिए खड़ी हो रही और आँखोंमें आँसू भरकर हाथ जोड़कर बोली, "कुमार, मैं अनाथा हूं। मुझे तुम भले ही कैद कर लो; परन्तु भिक्षु शरण भैयाको छोड़ दो।"

कुमार—उन्हें छोड़ देनेका अधिकार तो मन्द्राको है। हां, मैं तुम्हें अवश्य ही छोड़ सकता हूं। छोड़ देनेमें कुछ हर्ज भी नहीं है, क्यों कि तुम भागना नहीं जानतीं।

पीछेसे किसीने कहा, " नहीं, कभी न छोड़ना। यह रमणी मेरी प्रणयिनी है।"

लाला किशनप्रसादने युद्धस्थलमें अपनी बहादुरीकी हद दिखलानेके लिए थोड़ी सी शराब पी ली थी। आप कुछ पास जाकर बोले, "सत्यवती, तुम्हारा दास तुम्हारे सामने खड़ा है।"

सत्यवतीने कातर स्वरसे कहा–"कुमार, मुझे बचाओ।"

"तुम्हें बचानेकी किसीमें शक्ति नहीं है!" यह कहकर लाला साहबने सत्यवतीका हाथ पकड़ लिया।

कुमार नायकसिंहने सोचा, इस समय इसकी लात घूँसोंसे पूजा करना ही विशेष फलप्रद होगा और विना कुछ कहे सुने उन्होंने ऐसा ही किया।

सत्यवतीको छुड़ाकर कुमारने लाला साहबकी खूब पूजा की और फिर उन्हें एक झाड़से उन्हींके दुपट्टेके द्वारा कसकर बाँध दिया।

मन्द्रा वृक्षकी ओटमें खड़ी हुई ये सब बातें देख रही थी, इतनेमें थोड़ी ही दूरसे किसीकी आवाज सुनाई दी—"सती ! सती !"

सत्यवतीने कुमारका हाथ पकड़कर कातर स्वरसे कहा, "कुमार, यह मेरे शरण भैयाकी आवाज आ रही है। तुम उन्हें किसी तरह बचा लो।"

कुमार नायकसिंहने कुछ आगे बढ़कर गंभीर भावसे पुकारा "तुम कहाँ हो?"

भिक्षुने पूछा, "तुम कौन ?"

कुमार—बौद्ध भिक्षु, मैं नायकसिंह हूं। तुम किसी तरहका भय मत करो। सत्यवती सकुशल है और लाला किशनप्रसाद झाड़से बँधे हुए हैं।

भिक्षु समीप आ गया और नायकसिंहका हाथ अपने हाथमें लेकर बोला, "भाई, तुम्हें स्मरण होगा कि मेरे पिता महाराजा अजीतसिंहने पाटलीपुत्रके युद्धमें तुम्हारे पिताके प्राण बचाये थे। मेरे पैरमें बाण लग गया है। चलने फिरनेकी मुझमें शक्ति नहीं, इसलिए अब मैं धीरे धीरे चलता हूँ और मन्दार पर्वतकी सघन झाड़ीमें जो एक कुटीर है, वहां जाकर विश्राम करूंगा। कुमार नायकसिंह, इस समय तुमने जिस अबलाके धर्मकी रक्षा की है वह सत्यवती मेरी छोटी बहिन है। कुम्भके मेलेमें उसे कोई डाकू चुरा ले गया था। इतने समयके बाद उसका पता लगा है। अब तुम सावधान रहना, मिथिलाकी राज-कुमारीको मैं तुम्हारे पास छोड़े जाता हूँ।"

भिक्षु चला गया। सत्यवती दौड़कर पास आ गई और पूछने लगी "कुमार, क्या अभी तुम्हारे पास मेरे शरण भैया थे ? हाय ! वे कहां चले गये !"

नायकसिंहने कहा "कुमारी सत्यवती, जिन बुद्ध भगवानने तुम्हारे भाईको आश्रय दिया है, मैंने भी अब उन्हींकी शरण ले ली है। तुम्हें अब कोई डर नहीं है। तुम इस समय इस शिलाकन्दरमें बैठ जाओ, मैं जरा यहां वहां चलकर देखूं, क्या हाल है।"

मूसलधार पानी बरस रहा था। अन्धकार इतना गहरा था कि हाथको हाथ नहीं सूझता था। कुमार नायकसिंहने बिजलीके प्रकाशमें देखा कि मन्द्रा पाग-लिनीके समान चली जा रही है। उसके नेत्र उस सघन अंधकारको भेद कर भिक्षुका अनुसरण कर रहे हैं। नायकसिंहको देखकर उसने पूछा, "कुमार, भिक्षु कहां गया ?"

नायकसिंहने धीरेसे पूछा, "क्यों ?"

मन्द्रा—नायकसिंह तुमने कभी प्यार किया है ?

नायकसिंहने कुछ हँसकर कहा, "मैं समझता हूं कि प्यारके परिचय देनेका न तो यह स्थान है और न यह समय है। जिस बातको मैंने आज लगभग सात वर्षसे अपने हृदयमें छुपा रक्खा है, उसे अभिनय (नाटक) के अन्तिम अङ्कमें प्रगट करना, कहां तक सङ्गत या असङ्गत—"

मन्द्रा—कुमार मैं तुम्हारे प्रणय या प्यारके योग्य नहीं हूं। भाई, क्षमा करना आज मेरा निर्मम पाषाणहृदय चूर्ण हो गया है ।

मन्द्रा अपने आपको भूल गई। उसने अपने मस्तकको कुमारके वक्षःस्थलपर रख दिया। उसके भीगे हुए बालों और वस्त्रोंको देखकर नायकसिंह कांप उठे। उन्होंने अकुलाकर कहा, "कुमारी मन्द्रा, तुम शीघ्र ही राजमहलको लौट जाओ।"

"नहीं भाई, मेरे जीवनका भी यह अन्तिम अङ्क है। मैंने जिन्हें अपने बाणसे विद्ध किया है, अब मैं उन्हीं चरणोंका अनुसरण करूंगी। मेरा संसार और स्वर्ग अब उन्हीं पदतलोंमें है !" यह कहते कहते मन्द्रा रोने लगी ।

कुमार नायकसिंहने धीरे धीरे कहा, "अच्छा मन्द्रा, जाओ। तुम उन्हें मन्दार पर्वतकी दक्षिण कुटीरमें पाओगी ।"

यह सुनकर मन्द्रा उस विषम मार्गमें तेजीसे चल पड़ी ।

पानी बरस रहा है। चतुदर्शीकी पिछली रात है। सत्यवती दबे पैरोंसे कुमारके पास आकर बोली,—"कुमार, यह अभी तुम्हारे पाससे कौन चला गया ?" सत्यवती भयसे कांप रही थी। नायकसिंहने कहा, "अङ्गराज्यकी शक्ति मन्द्रा!"

सत्यवती—वह कहां गई है ?

नायक—तुम्हारे शरणभाईके चरणशरणमें। देखो, ऊपर बुद्ध-शक्ति है और नीचे धरातलमें राजशक्ति। यह सब तुम्हारे भाईकी ही महिमा है ।

सत्यवती—कुमार, क्या तुम मन्द्रा पर प्यार करते हो ?

कुमार—जान पड़ता है कि करता हूं; किन्तु क्या तुमने हम दोनोंकी बातचीत सुन ली है ?

सत्यवतीने लजाकर कहा, "हां सुन ली है; परन्तु कुमार, अब तुम क्या करोगे ?"

सरलाका यह बालिकासुलभ प्रश्न सुनकर नायकसिंहकी आँखोंमें प्रेमके आँसू भर आये। वे बोले, "करूँगा कुछ नहीं। संन्यास ले लूंगा।"

सत्यवती—"नहीं। तुम संसारमें रहो। यदि कोई तुमपर प्यार करता हो?—"

नायकसिंहने अभिमानके साथ कहा—"तो मैं तुम्हारी सलाह माननेको तैयार हूं?"

(९)

धीरे धीरे बादल फटने लगे और जहां तहां हजारों लाखों तारे चमकने लगे। पर्वतकी एक ओर, बिलकुल निर्जन वनमें एक पुरानी टूटीफूटी कुटीर है। भिक्षु इसी कुटीरमें पत्तोंकी शय्या पर सो रहा है। वह अपने बाणविद्ध पैरको एक पत्थरके ऊपर रक्खे हुए है और बायीं भुजाको तकिया बनाये हुए निद्रा ले रहा है। पैरसे एक एक बूँद रक्त टपककर पर्णशय्याको रँग रहा है।

अभी सवेरा होनेमें कुछ विलम्ब है। बहुत ढूंढ़ खोज करनेके बाद मन्द्राने कुटीरके द्वारपर आकर देखा कि भिक्षु नींदमें अचेत पड़ा है।

मन्द्रा पैरोंके पास जाकर बैठ गई। उसने देखा कि तीक्ष्ण बाण मांसके भीतरतक चला गया है। इससे उसे बड़ा कष्ट हुआ। उसने अपने अंचलसे एक प्रकारके वृक्षकी पत्ती निकालकर चुटकीसे मसली और उसे घावपर लगा दिया। इसके बाद वह अपने सुन्दर केशोंको तलवारकी धारसे काट काटकर उसपर लगाने लगी और अन्तमें उसने अपने रेशमी ओढ़नेको फाड़कर तलुवेसे लेकर घुटने तकके भागको खूब कसकर बाँध दिया। आज भिक्षुके चरणतलोंका स्पर्श करके मन्द्राने आपको परम भाग्यवती समझा। इस समय उसके प्रेमका प्रवाह अरोक था। अपने संकल्पित स्वामीके चरणोंका चुम्बन करके वह आँसू बहाने लगी। इसी समय भिक्षुने आँखें खोलकर पूछा, "तुम कौन हो?"

मन्द्रा—देव, मैं आपके चरणोंकी दासी हूं।

भिक्षु—(विस्मित होकर) क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं?

मन्द्रा—नाथ, यह स्वप्न नहीं, सत्य है। तुम मेरे जीवनके देवता हो। तुम्हारे चरणको विद्ध करके मैं आत्मबलि दे चुकी हूं।

मन्द्राका यह सबसे पहला प्यार या अनुराग था। इस समय उसके नेत्र पृथ्वीके प्रत्येक पदार्थको प्रेममय और करुणापूर्ण देख रहे थे।

भिक्षु उठकर बैठ गया और बोला–"मन्द्रा, मैं एक साधारण शरीरधारी हूं, देव नहीं। मैं मनुष्य हूं; परन्तु संन्यासी हो गया हूं, इसलिए संसार मेरे लिए निःसार और शून्य है। मेरा मार्ग दूसरा है और तुम्हारा दूसरा। तुम संसार-मार्गमें ही रहो और अपने सुयशसे जगतको उज्ज्वल करो। कभी अवसर आवेगा, तो मैं तुम्हारे यशको देख जाऊंगा। मन्द्रा, तुम्हारे हृदयमें जिस असीम करुणाका उद्गम हुआ है, मैं चाहता हूं कि वह अङ्गराजमें शतसहस्र धाराओंसे बहे और सबके लिए शान्तिप्रद हो।"

मन्द्राने हाथ जोड़कर कहा, "जीवननाथ, आप संसारको छोड़कर न जावें। याद कीजिए, आप प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं।"

भिक्षु—कौनसी प्रतिज्ञा? मुझे तो याद नहीं आती।

मन्द्र—देव, उस दिन आपने स्वीकार किया था कि मैं आत्मबलि देकर अङ्ग-राज्यमें करुणाका संचार करूंगा। इसलिए अब उसी सत्यपाशमें बँधे रहो। भिक्षु-महाशय, संसारमें ही रहो, इसे मत छोड़ो। आपको देखकर मैं सीखूंगी और अपने हृदयमन्दिरमें विराजमान करके आपकी ही पूजा करूंगी। मुझे अब अपने धर्मकी दीक्षा दे दो। भिक्षुराज, जान पड़ता है कि बौद्ध धर्म बहुत ही अच्छा धर्म है।

भिक्षु—कुमारी, क्या तुम मुझे संसारगृहमें रखनेके लिए तैयार हो?

मन्दा—सब तरहसे। भिक्षुमहोदय, अब मेरे हृदयके टुकड़े करके मत जाओ। मैं अपने प्राणोंको तुमपर न्योछावर कर चुकी हूं।

उस भुवनमोहन मुखसे विषादमयी वाणी सुनकर भिक्षु उठके खड़ा हो गया। अपने पैरोंमें पड़ी हुई उस राजकुमारीको वह अपनी शक्तिशालिनी भुजाओंसे उठाकर कुटीरके बाहर ले आया।

पूर्वाकाशसे उषाकी किरणें उन दोनोंके मुखपर पड़कर एक अपूर्व चित्रकी रचना करने लगीं।

बौद्ध भिक्षुने मन्द्राके निष्कलंक और पवित्र मुखपर अपने दोनों नेत्र स्थापित करके कहा, "प्रेममयी, तुम इतनी व्याकुल क्यों हो रही हो? जब महादेव जैसे तपस्वी भी इस मायाके मानकी रक्षा करनेमें संसारी हो गये हैं, तब मैं तो किस खेतकी मूली हूं? कुमारी, मैं हिन्दू क्षत्रिय हूं। तंत्रका कलंक और जीवहत्या दूर करनेके लिए बौद्ध धर्मकी सृष्टि हुई है। पर बौद्ध हिन्दू धर्मसे पृथक् नहीं है। अतएव मैं बौद्ध होकर भी हिन्दू हूं। प्रिये, तुम्हारे पाणि-

ग्रहणकी अभिलाषासे मैंने आज लगभग एक वर्षसे मिथिलाका सिंहासन छोड़ दिया है। भिक्षुवेषमें अपनेको छुपाये हुए शरणसिंह जंगल और पहाड़ोंमें रहकर और नगरोंमें घूमकर जिस रत्नको ढूंढ़ रहा था, वह आज इसे मिल गया।

मन्द्राका हृदय उछलने लगा। इस समय उसका प्रत्येक रक्तबिन्दु आनन्दसे नृत्य कर रहा था। उसने अपने प्रेमपूर्ण नेत्रोंको शरणकी ओर फिराकर हँसीमें कहा, "मैं तो पहले ही समझ गई थी कि तुम कोई ढोंगी तपस्वी हो!"

शरणसिंह—और इसी लिए तुमने बाणविद्ध करके स्वयंवर करनेकी यह अद्भुत युक्ति सोच रक्खी थी!

मन्द्राको इसका कोई उत्तर न सूझा। लज्जित होकर वह वहांसे तत्काल ही भाग गई ।

वीर-परीक्षा ।

(१)

दक्षिणमें भीमा और नीरा नदीके संगमपर महेन्द्रविहार नामका प्रसिद्ध नगर था। इस नगरमें द्रोणायण नामक राजाकी राजधानी थी । द्रोणायणकी प्रबल राजवृद्धिलालसा दूसरे राजाओंके हृदयमें भय और अश्रद्धाका उदय कर रही थी ।

उस समय गजेन्द्रगढ़का राजा मल्लशूर ही ऐसा था, जो द्रोणायणकी लालसाको अंकुशमें रख सका था; परन्तु द्रोणायणके सौभाग्यसे एकाएक उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र पुष्पहास सिंहासन पर बैठा। पुष्पहास अभी बालक था, इसलिए उसका प्रधान मन्त्री झल्लकण्ठ राज्यका कामकाज देखने लगा। गजेन्द्रगढ़के राजपरिवारका अभीतक अशौच भी न उतरा था कि द्रोणायणने मौका पाकर मल्लशूरके सुरक्षित राज्यपर चढ़ाई कर दी; मल्लशूरकी मृत्युसे वह अपने विजयमार्गको निष्कण्टक समझने लगा था। इस युद्धमें उसका पुत्र भद्रमुख और पुत्री भद्रसामा भी उपस्थित थी ।

जिस समय झल्लकण्ठ समरभूमिमें बाणवर्षण कर रहा था, उस समय उसने देखा कि सामनेसे भद्रसामा अपनी भ्रू-कमान पर पुष्पधन्वाके तीखे तीखे बाण चढ़ाकर छोड़ रही है और वे उसके हृदयके आरपार जा रहे हैं।

उस दिनका युद्ध समाप्त होने पर झल्लकण्ठ अपनी छावनीमें सन्ध्योपासना कर रहा था। उस समय उसके अन्तःकरणमें भगवानके चरण कमलोंके बदले भद्रसामाकी भुवनमोहिनी मूर्तिके दर्शन होते थे। वह बहुत चाहता था कि मैं इस मूर्तिको भूल जाऊँ; परन्तु उसकी सारी ही चेष्टायें विफल होती थीं। अन्तमें वह कातर होकर अपने इष्टदेवसे प्रार्थना करने लगा—"हे प्रभो, हे दयासिन्धो, मुझे यह एकाएक क्या हो गया? हे नाथ, मेरे हृदयमें यह किस प्रकारका भाव उत्पन्न होता है? अपने चिर-शत्रुके साथ स्नेहसम्बन्ध जोड़नेकी लालसा मेरे चित्तमें क्यों उदित होती है? जिसको अपने विषम बाणसे विद्ध करके प्रसन्न होना चाहिए, उसके चरणोंमें अपना हृदय अर्पण करनेकी यह विपरीत इच्छा क्यों होती है? जिसके हृदयके रक्तसे अपने कर्तव्यका तर्पण करना चाहिए, उसके चरणोंकी अपने हृदयके रक्तसे पूजा करनेको जी क्यों चाहता है? हे मदनदहन भगवन्, मुझे बल प्रदान करो और मेरे चित्तके क्षोभको शान्त करो।"

उपासना पूरी न होने पाई थी कि इतनेमें द्वारपालने आकर खबर दी—"कोई दूत आपसे मिलना चाहता है।" उपासना अधूरी रह गई। किसी अव्यक्त कारणसे उसका चित्त डावाँडोल होने लगा। उसके कानोंमें मधुर मधुर आशाओंकी ध्वनि गूँजने लगी। प्रबल वासनाकी झञ्झावायुने उसके संयमके दीपकको डावाँडोल कर दिया। अन्तमें उसने आज्ञा दे दी—"अच्छा उसे भीतर आने दो।"

दूतने आकर प्रणाम किया और मंत्रीके हाथमें एक पत्र देकर वह उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगा। मंत्री काँपते हुए हाथोंसे उसे खोलकर बाँचने लगाः—

"स्वस्तिश्रीसमरविजयश्रीपूजितसचिवश्रेष्ठझल्लकण्ठमहोदयेषु—

समर-कुशल वीरश्रेष्ठ, आजतक मेरे हृदयमें जिस आदर्श वीर-मूर्तिके देखनेकी उत्कण्ठा लग रही थी और जिस मूर्तिको अपने हृदयमन्दिरमें स्थापित करके मैं निरन्तर पूजा किया करती थी, उसका अवलोकन मैंने आपकी मनोरम मूर्तिमें कर लिया है। यदि आप इस शत्रुकन्याका पूजोपचार स्वीकार करेंगे तो मैं अपनेको कृतार्थ समझूँगी। इत्यलं विज्ञेषु।

—राजकन्या भद्रसामा।"

हर्षके आवेगसे झल्लकण्ठका हृदय उछलने लगा। वह उक्त पत्रको बार बार बाँचने लगा। कभी तो पत्र पर पूरा पूरा विश्वास करके वह सौख्यके शिखर

पर चढ़ने लगा और कभी अविश्वास करके चिन्ताकी धूलमें लोटने लगा। कहीं यह आँखोंमें धूल न डाली जाती हो! कहीं यह उपहास न हो, व्यङ्ग्य न हो, चिढ़ाना न हो! नहीं, सत्य भी हो सकता है। सत्य होनेमें कोई सन्देह नहीं। तब क्या इस प्यासे चातकके मुँहमें एकाएक जलकी धारा पड़ जायगी? अहा हा! सचमुच ही आज मैं विजयी हुआ हूं। रमणीके चित्तपर विजय प्राप्त करना साम्राज्यविजयसे कहीं बढ़कर है। मैं धन्य हूं! भाग्यशाली हूं! विजयी हूं!

इस प्रकार नानाप्रकारकी विचार-तरंगोंमें डूबते और उतराते हुए आखिर उसने पत्रका उत्तर लिखा:—

"मन्मथमैत्रीवशीकृता श्रीमती भद्रसामाके समीपमें।

भद्रे, तुम पुष्पधन्वाकी सम्मोहन बाण हो। यह समझमें नहीं आता कि मैं आज पराजित हुआ हूँ या जीता हूँ; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मैं सुखी हुआ हूं। मैं चाहता हूं कि आजका यह अपूर्व सुख निरंतर भोगता रहूँ।

—मुग्ध झल्लकण्ठ।"

दूसरे दिन मन्त्री झल्लकण्ठके प्रयत्नसे सन्धि हो गई। जब झल्लकण्ठ गजेन्द्र-गढ़ राज्यका बहुतसा हिस्सा द्रोणायणको देनेके लिए तत्पर हो गया, तब द्रोणायणने भी उसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर देना स्वीकार कर लिया। सन्धिपत्रपर दोनों ओरके हस्ताक्षर हो गये। झल्लकण्ठ रमणी-मोहमें पड़कर कर्तव्यसे भ्रष्ट हो गया!

(२)

नीरा और भीमा नदीके सङ्गमके समीप ही एक पुष्पवाटिका थी। एक ओर भीमा कदलीकुञ्जमें क्रीड़ा करती हुई, शुभ्रशिलाओंसे टकराती हुई, विविध प्रकारकें वृक्षोंसे छेड़छाड़ करती हुई और अपनी निर्मल धाराको नीराके नीरमें मिलाती हुई, उसकी छाती पर विश्राम लेती हुई दिखलाई देती थी और दूसरी ओर भीमा अपनी भुजारूप तरंगोंसे उसे गाढ़ आलिङ्गन देती हुई और फेनराशिरूप आनन्द प्रगट करती हुई मातृभावको प्रकट करती थी। राजकुमारी उद्यानके एक रमणीय चबूतरेपर बैठी थी और अपने आभूषणमण्डित हाथोंके ताल दे-देकर क्रीडा-मयूरको नचा रही थी। उसकी पुष्पिका नामक सखीने अशोककीं माला गूँथकर उसके मुकुटमें पहना दी थी। उसके शुभ्र ललाटपर यह

अरुणवर्ण माला ऐसी मालूम होती थी जैसे उषा देवीके ललाटमें कुङ्कुमका तिलक। उसका सुप्रसन्न और सुन्दर मुख उस पुष्पवाटिकाका एक विलक्षण पुष्प सरीखा मालूम होता था। पुष्पोंकी सुगन्धिसे भीगी हुई शीतल वायु बह रही थी। कपोतिनीका करुण-कूजन एक प्रकारका अपूर्व विषाद उत्पन्न करता था। इसी समय मंत्री झल्लकण्ठने पुष्पवाटिकामें प्रवेश किया।

कपोतिनी उड़ गई। मयूर अपना नृत्य बन्द करके बकुलवृक्ष पर जा बैठा और सखियाँ इधर उधर हो गईं। राजकन्या जहाँकी तहाँ बैठी रही। उसके मुखपर लज्जा या संकोचकी झलक भी न थी। हाँ, उदासीनतासे मिली हुई घृणाकी छाया अवश्य ही उसकी चेष्टा पर दिखलाई देती थी। झल्लकण्ठ यह देखकर भी अपनी प्रेयसीकी उस अवस्थापर मुग्ध होकर स्वर्गसुखका अनुभव करने लगा।

कुछ समय तक निस्तब्ध रहनेके बाद राजकुमारीने मंत्रीकी ओर देखकर कहा—"मन्त्री महाशय, आपको मालूम होगा कि यह एक स्त्रीका क्रीडास्थल है; किसी राजनीतिज्ञके ठहरनेका स्थान नहीं!"

उस समय झल्लकण्ठ प्रणय-विह्वल हो रहा था। उसने स्नेहयुक्त स्वरसे कहा—"प्रेयसी, प्रणयके कपटकौशलने मुझे यहाँ आनेका अधिकार दिया है, इसलिए आया हूँ। प्रेममयी, भावके आवेशमें मुझसे यदि कुछ सभ्यताका उल्लंघन हुआ हो, तो उसपर ध्यान न देकर मुझे क्षमा करो और मुझे अपना ही समझ लो।" यह कहकर वह आगे बढ़ा और उसने चाहा कि मैं भद्रसामाका हाथ पकड़ लूँ। इस समय मन्त्रीके ललाट पर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं और शरीरमें कम्प हो रहा था।

राजकुमारी चोट खाई हुई सर्पिणीके समान कुपित होकर बोली—

"सावधान मंत्री! एक कुलीन महिलाको अपमानित करनेका यत्न मत करना।"

झल्लकण्ठका वीर हृदय एक अबलाके आदेश-वाक्यसे काँप गया। वह विनीत स्वरसे बोला—"कुमारी, तुम्हारा उत्साह और तुम्हारी सम्मति पाकर ही मैं इस साहसके करनेके लिए तैयार हुआ था। अपनी पूर्वस्वीकारताका स्मरण करके मुझे अपने प्रेमके प्रसादसे वंचित मत करो।"

भद्रसामा पहलेहीके समान तीव्रकण्ठसे बोली—"मैंने आपके वीरत्वपर मुग्ध होकर यदि आपको कोई स्वीकारता दी हो तो उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। मैंने समझ लिया है कि मैं आपके सर्वथा अयोग्य हूँ। युद्ध होनेके बाद जब

मैं शान्त हुई और मैंने इस विषयका अच्छीतरह विचार किया, तब मुझे मालूम हुआ कि मैंने अपनी ढिटाईसे जो कुछ किया है, वह अनुचित है। मेरी इस ढिटाईको आप क्षमा कर दें।"

वाक्यवाणोंसे विद्ध हुआ झल्लकण्ठ, कुछ समयतक राजकुमारीके लावण्यललित मुखकी ओर देखता रहा। उसने देखा कि उसके मुखपर करुणा श्रद्धाका लेश नहीं, खड्गके पानीके समान उसका विचार स्थिर है। वह निराश होकर वहाँसे चल दिया और कदलीकुंजकी मधुर शीतल छायामेंसे भी अपने विरहतप्त हृदयको विना शान्ति पहुँचाये ही बाहर हो गया।

इधर वह गया और उधर भद्रसामाके दृढ निश्चयका दुर्ग फिसल पड़ा। उसके हृदयमें तीव्र वेदना होने लगी। वह आपेमें न रही और विक्षिप्तोंके समान चेष्टा करने लगी। अपने मस्तकके पुष्पमुकुटको उसने तोड़-मरोड़कर फेंक दिया। इसके बाद वह अपनी कंचुकीमेंसे मन्त्रीकी प्रणयपत्रिका निकालकर उसका बार बार चुम्बन करने लगी और बारबार उसे मस्तकसे लगाने लगी। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी अविरल धारा बहने लगी। वह आप ही आप कहने लगी—"आओ प्यारे, आओ, मैं तुम्हारे अपमानका बदला चुकाऊँगी। हे देव, कृपा करके फिर पधारो। मैं प्रेमश्रद्धाके चन्दनसे तुम्हारी पूजा करूँगी। इस हृदयमन्दिरको मैंने सब प्रकारसे तुम्हारे योग्य बना लिया है, उसके प्रेमसिंहासनपर तुम्हें विराजमान करूँगी। हे मनोहर, आओ! मैं अपने यौवन-वसन्तकी प्रथम पुष्पांजलि तुम्हारे चरणोंमें अर्पण करूँगी। अहो अभिमानी प्रियतम, आओ! आओ! कहाँ जाते हो? तुम्हारे बिना मुझे यहाँ शून्य ही शून्य दिखता है। हे सन्तापहार, मेरे अन्तरको शीतल करो। हे प्राणेश्वर, लौट आओ! लौट आओ!"

राजकन्याका विलाप सुनकर उसकी सखी पुष्पिका उधरको दौड़ी हुई गई जिधरसे झल्लकण्ठ गया था। उसे देखते ही वह पुकारकर बोली, "मन्त्री महाशय, राजकुमारीजी आपके लिए रो रो कर व्याकुल हो रही हैं; इस लिए आप लौटिए, जल्दी लौटिए!"

चन्द्रमाकी शीतल किरणोंसे जिस प्रकार सागर उछलता है, उसी प्रकार झल्लकण्ठका हृदय हर्षसे उछलने लगा। वह तुरन्त ही लौटा और पुष्प-

वाटिकामें आ पहुँचा। उसने देखा कि राजकुमारी उसीका नाम ले लेकर पुकार रही है।

भावमुग्ध झल्लकण्ठने स्नेहपूर्ण कण्ठसे कहा—"प्यारी, मैं लौट आया। तेरे चरणोंपर प्रेमका अर्घ्य अर्पण करनेके लिए मैं प्रस्तुत हूँ। हृदयेश्वरी, उठ!"

झल्लकण्ठका वह आशांकुर जिसने हाल ही दर्शन दिया था अधिक समयतक न ठहरा। राजकन्या एकाएक चौंक उठी और बाघिनीके समान गर्ज कर बोली—"तुम यहां क्यों आये? इसी समय चले जाओ। मेरा एक बार अपमान करके क्या तुम सन्तुष्ट नहीं हुए? और भी अत्याचार करना चाहते हो? घावपर नमक छिड़कने आये हो? जाओ, यहां तुम्हारा काम नहीं! लोकाचारको समझने योग्य बुद्धि भी क्या तुममें नहीं है?"

झल्लकण्ठ राजकुमारीकी वह क्रोधपूर्ण मुद्रा देखकर अवाक् और विस्मित हो रहा। वह यह सोचता हुआ कि—रमणीका हृदय कितना अगम्य और कल्पनातीत होता है—चुप चाप चल दिया। पुष्पिका यह सब लीला देखकर स्तब्ध हो रही।

थोड़ी ही देरमें भद्रसामा फिर विलाप करने लगी—आये? किस लिए आये? क्या रतिको जीतनेके लिए? अच्छा तो फिर लौट क्यों गये? क्या रतिको जीत नहीं सके? यदि समरभूमिमें बाहुबल दिखला सकते हो तो रतिभूमिमें तुम्हारा हृदय-बल क्यों लुप्त हो जाता है? हे गौरवभूषित, आओ! वीरता दिखलाकर मेरे हृदय-दुर्गपर अधिकार कर लो। हाय! मैंने तुम्हें पाकर खो दिया! हे प्राणवल्लभ, मैं तुम्हारे लिए मरती हूँ, मुझे बचाओ!

(३)

झल्लकण्ठने अपनी छावनीमें पहुँचकर राजकुमारीको एक पत्र लिखा—"भद्रे, यदि मूर्खतावश मैंने तुम्हें कोई कष्ट पहुँचाया हो, तो उसके लिए मुझे क्षमा करो। मैं अपने अपराधका प्रायश्चित्त भोग रहा हूँ।

—त्वदर्पितप्राण झल्लकण्ठ।"

दूत पत्र देकर लौट आया। राजकुमारीने कुछ भी उत्तर न दिया।

राजकुमार भद्रमुखने अपनी बहनसे पूछा—"भद्रे, क्या तूने सचिवश्रेष्ठ झल्लकण्ठको निराश कर दिया? प्यारी बहन, मेरी समझमें वे सब तरहसे तेरे योग्य हैं!"

राजकुमारीने लम्बी साँस लेकर कहा—"वे मेरे योग्य भले ही हों, परन्तु मैं उनके योग्य नहीं हूँ। मेरी समझमें उनके योग्य रणभूमि है प्रेमभूमि नहीं। तुम उनसे कह देना कि मेरी प्रगल्भता और ढिटाईको भूल जायँ।"

राजकुमार चला गया।

भाईके चले जानेपर भद्रसामाका मन फिर हाथमें नहीं रहा। वह सोचने लगी—अच्छा प्रेम तो उत्पन्न हो जाता है पर उसके साथ योग्यता क्यों नहीं रहती? क्या वह योग्यताको लेकर उत्पन्न नहीं होता? यदि नहीं तो फिर यह गुणदोषविचारकी प्रवृत्ति ही क्यों होती है?

इसी समय राजा द्रोणायणने भी आकर पूछा–बेटी, एकाएक तुझे यह क्या हो गया? झल्लकण्ठको तूने निराश क्यों कर दिया? क्या तू नहीं जानती कि उसने अपने लिए क्या किया है? उसने मुझे एक विशाल राज्यका स्वामी बना दिया है और मेरी बड़ी भारी लालसाको अनायास ही पूर्ण कर दिया है। अपना लड़कपन छोड़ दे और झल्लकण्ठसे विवाह करना स्वीकार कर ले। यह तुझे समझ रखना चाहिए कि तेरी मूर्खताके कारण मैं प्राप्त किया हुआ राज्य न छोड़ दूँगा; तुझे झल्लकण्ठके साथ ब्याह करना ही पड़ेगा।"

राजकुमारीने दृढ़ताके साथ कहा—"पिता, आप राज्यके लोभसे अपनी बेटीका विवाह करना चाहते हैं! पर मेरी समझमें यह बेटीका विवाह नहीं—बेचना है।"

द्रोणायण वाक्यबाणसे विद्ध होकर चला गया।

भद्रसामा सोचने लगी—"कर्तव्य-पालनके लिए क्या मैं चित्तका दमन नहीं कर सकूँगी? एक ओर प्रेम है और दूसरी ओर कर्तव्य। क्या प्रेमका आसन कर्तव्यसे ऊँचा है? पर प्रेमपर विजय प्राप्त करना भी तो सहज नहीं है।" जिस तरह प्रबल पवनके झकोरोंसे समुद्र अस्थिर हो जाता है उसीतरह राजकुमारीका हृदय अस्थिर हो गया। प्रेम और कर्तव्यके परस्पर विरुद्ध भावोंने उसके चित्तमें द्वन्द्व युद्ध मचा दिया। कभी एक पक्षकी जीत होती है और कभी दूसरेकी। वह नहीं सोच सकती कि मैं क्या करूँ। वह ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी कि हे दयामयप्रभो, मुझे सुमति दो और सन्मार्ग सुझाओ।

(४)

झल्लकण्ठ अपने स्वामीका राज्य वापिस माँगने लगा; परन्तु द्रोणायण टालटूल करने लगा। अन्तमें जब मन्त्री बहुत पीछे पड़ गया, तब द्रोणायण

बोला—"मैं तो कन्यादान करनेके लिए तैयार हूँ, पर कन्या राजी नहीं होती, इसमें मेरा क्या वश है? तुम्ही उसे समझा-बुझा कर राजी क्यों नहीं कर लेते?" इस पर झल्लकण्ठने भद्रसामाको प्रसन्न करनेके लिए कई वार प्रयत्न किया। परंतु जब उसने जरा भी सफलता होती न देखी, तब कहा—" बस, मेरे स्वामीका राज्य लौटा दो।"

द्रोणायण बोला—"कठिनाईसे पाया हुआ राज्य क्या कोई इसतरह लौटाता है? मैं न लौटाऊँगा।"

झल्लकण्ठने कहा—" अच्छा, यदि मेरी भुजाओंमें बल होगा, तो लौटा लूँगा।"

द्रोणायण बोला—"राज्य तो शायद लौटा भी लो; पर यह भी तो सोच लो कि तुम्हें अपने भुजबलसे—जिसका कि तुम्हें बड़ा गर्व है—मेरी कन्या तो नहीं मिल जायगी!"

झल्लकण्ठने इसका कोई उत्तर न दिया।

(५)

अपमानसे उत्तेजित हुआ झल्लकण्ठ राज्य लौटानेकी लगातार चेष्टा करने लगा। इस कार्यमें उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी। युद्ध पर युद्ध करके उसने अपना गया हुआ राज्य ही नहीं लौटा लिया, किन्तु द्रोणायणके राज्यके प्रधान प्रधान किलोंपर भी उसका झण्डा फहराने लगा। प्रायश्चित्त-प्रयासी मंत्रीके प्रबल आक्रमणोंसे द्रोणायणके पैर उखड़ गये, लाचार होकर वह सन्धि करनेकी चेष्टा करने लगा।

झल्लकण्ठ अपनी छावनीमें बैठा है। विजयके उल्लाससे उसका मुँह प्रसन्न दिखलाई देता है। उसकी छातीपर पड़ी हुई मोतियोंकी माला विजयमालाकी तरह शोभा दे रही है। उसके नेत्रोंमें एक अपूर्व ही तेज झलक रहा है। इस समय उसे भद्रसामाकी प्रथम प्रणयपत्रिकाकी याद आई। उसमें लिखे हुए वाक्य उसे ऐसे मालूम होने लगे, मानों वह कमलनयना ही किसी अदृश्य स्थानमें बैठी हुई उससे उक्त वचन कह रही है। सोचने लगा,—किसी कविने इन्हीं वचनोंको लक्ष्य करके ही कहा है;—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकाशनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।

एतानि तानि वचनानि सरोरुहाक्ष्यः
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥

इसी समय द्वारपालने आकर खबर दी कि राजकुमार भद्रमुख सन्धिका प्रस्ताव लेकर आये हैं। झल्लकण्ठ उठकर बाहर गया और भद्रमुखको आदरपूर्वक भीतर ले आया। दोनों अपने अपने आसन पर बैठ गये। भद्रमुखने कहा—"आप अपना राज्य ले चुके—आपकी इच्छा पूर्ण हो गई, अब इच्छा हो तो आप सन्धि कर लें। मैं सन्धि करके शान्तिता और मित्रतासे रहनेके लिए तैयार हूँ।"

झल्लकण्ठने कहा—"राजकुमार आप तैयार हैं, परन्तु मैं तैयार नहीं। मैंने इस कार्यमें बड़ी हानि सही है और अशान्ति भी बहुत भोगी है। मैं उसका पूरा पूरा बदला लिए बिना न रहूँगा। यह बदला आपकी बहिन भद्रसामा है जिसने कि मुझे पहले युद्धमें हराया था। जबतक मैं उसे न पाऊँगा, तब तक मेरा बदला नहीं चुक सकता।" भद्रमुख बोला—"नहीं नहीं, मंत्री, तुम भूलते हो। सच्चा बदला, लो यह है मेरे पास!" यह कहकर उसने अपनी आस्तीनसे छुपी हुई कटार निकालकर झल्लकण्ठकी छातीमें भोंक दी और वहाँसे वह वायु-वेगसे भागकर निकल गया!

इतनेहीमें द्वारपालने आकर खबर दी कि राजकुमारी भद्रसामाका दूत आया है।

मरणोन्मुख मंत्रीने कहा—"आने दो, आने दो। उस चण्डीका दूत क्यों आया है?" यह कहते कहते उसे मूर्च्छा आगई।

द्वारपाल घबड़ाकर चिल्ला उठा। बातकी बातमें हजारों आदमी एकट्ठे हो आये। दूत भी भीतर आया। थोड़ी देरमें मंत्रीने आँख खोली। उसने सब लोगोंको बाहर जानेकी आज्ञा देकर दूतको अपने समीप बुलाया।

दूतने पूछा—"आपकी यह दशा किसने की?"

मंत्रीने कहा—"मेरे भाग्यने अर्थात् राजकुमार भद्रमुखने।"

दूत बोला—"वह बड़ा कायर निकला। वीरोंका तो यह काम नहीं है।"

कण्ठगतप्राण झल्लकण्ठने कहा—"यह भी मेरे ही भाग्यका दोष है। अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट होकर मैंने अपने स्वार्थके लिए अपने स्वामीका राज्य बेच दिया था, यह मुझे उसीका फल मिला है—उसीका प्रायश्चित्त है। पर अब इन बातोंका क्या फल होगा? तुम अपनी बात कहो कि किसलिए आये हो।"

दूतने एक चिट्ठी निकालकर मंत्रीके हाथमें दे दी। मंत्री उस चन्दन-केसर-लिप्त पत्रको बाँचनेका प्रयत्न करने लगा; परन्तु वह व्यर्थ हुआ-उससे एक अक्षर भी न पढ़ा गया। उसकी आँखोंकी ज्योति चली जा रही थी। आखिर उसने पत्रिकाको माथेसे लगा कर चूम ली और दूतके हाथमें देकर कहा-"दूत, दैवने मुझे अपनी प्यारीकी पत्रिका बाँचनेसे वंचित कर दिया; परन्तु जबतक मुझमें सुननेकी शक्ति है तबतक तुम ही मुझे इसे पढ़कर सुना दो। मुझे अब आँखोंसे कुछ भी नहीं सूझता। मृत्यु मुझे अपनी ओर खींच रही है। अब विलम्ब मत करो, जल्दीसे मुझे सुना दो कि प्यारीने मुझे क्या लिखा है।"

दूत पत्र पढ़ने लगा—

"सचिवश्रेष्ठ झल्लकण्ठकी सेवामें। प्यारे, आपके कर्तव्यभ्रष्ट होनेसे मेरे हृदयमें सौ बिच्छुओंकी सी वेदना होती थी, आपको उचित मार्ग छोड़कर दूसरी दिशाको जाते देखकर मेरी छाती विदीर्ण हो रही थी, आपको स्वार्थान्ध देखकर—आपके वीरत्वमें कालिमा देखकर मेरे हृदयाकाशमें दुःखके काले बादल छा रहे थे—मैं एक तरहकी नरकयातना भोग रही थी। परन्तु अब आपको फिर गौरवान्वित देखकर मेरे आनन्दका कुछ ठिकाना नहीं है। आज आपकी कीर्ति-पताका देखकर मैं हृदयमें फूली नहीं समाती। अब मैं समझी हूं कि आपकी इस रणविजयने ही मुझपर विजय प्राप्त की है। अच्छा तो अब हे नयनरंजन, हे वीरप्रवर, आओ! मेरे हृदयमंदिरमें प्रवेश करो! मेरा हृदयराज्य जीता जा चुका है, अब मुझे आपका विलम्ब असह्य है। आपके कीर्तिचन्द्रको जो राहुकलंक लग गया था, वह अब कहीं दिखलाई नहीं देता। हे मनोमोहन, आओ पधारो! मेरा प्रेम पूर्ववत् अखण्ड है। उस पर जो कालीघाटा छा गई थी वह तितर बितर हो चुकी है। हृदयेश्वर, आज मैं तनमनसे आपकी उपासना करती हूँ और अपने नवयौवनका प्रथम अर्घ्य आपके चरणोंमें अर्पण करती हूँ!

पूजार्थिनी—भद्रसामा।"

पत्र समाप्त हो गया। झल्लकण्ठने मरणरुद्ध कण्ठसे कहा-। दूत, मेरी ओरसे राजकुमारीको यह निवेदन करना—" देवी, मैं मूर्ख हूँ। तुम जैसी वीराङ्गनायें कैसे प्राप्त हो सकती हैं, यह मैं न समझ सका था। इसीलिए मैं अनुचित सन्धि करके कर्तव्यभ्रष्ट हुआ और तुम्हें भी न पासका। इस भूलका कष्ट असह्य था; परन्तु इस कारणसे मुझे कुछ शान्ति मिलती है कि यह मैंने तुम जैसे रमणीरत्नके

पानेके लिए की थी। तुम्हारा प्रेम सच्चा प्रेम है। तुम वीरपरीक्षक हो। तुमने अपना हृदय मुझे दे दिया है; यह जानकर मैं मरता हूँ। तुम्हारी शोकहारिणी पत्रिकाने मेरे इस अन्तसमयको आनन्दमय बना दिया है। आज मेरा प्रेम सार्थक हुआ।" अब मरते समय उसे प्रेमकी निशानी क्या दूँ? अच्छा ठहरो, राजकुमारीकी प्रथम प्रणयपत्रिकाको मैंने अपने हृदयके पास जेबमें रख छोड़ा है, उसे ही तुम उसे दे देना।

इतना कहकर झल्लकण्ठ पत्रिकाको निकालनेका प्रयत्न करने लगा; परंतु उसने देखा कि कटारके साथ पत्रिकाका अंश भी शरीरके भीतर घुस गया है। रक्तरंजित पत्रिकाको निकालकर झल्लकण्ठने चूम ली, और फिर उसे तथा लहू-लुहान कटारको दूतके हाथमें देकर कहा—"दूत, जाओ, राजकुमारीसे कहना कि यह कटार यद्यपि मेरा जीवन समाप्त करनेवाली है, तो भी इसने मेरा बड़ा उपकार किया है। इसने तुम्हारी प्रणयपत्रिकाके अक्षर मेरे शरीरके रक्तमें सदाके लिए मिला दिये हैं। मैं इससे कृतार्थ हो गया।"

कटारके निकलते ही शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी। मंत्री झल्लकण्ठका शरीर शय्या पर गिर गया।

दूतने जाकर राज्यकन्यासे सब हाल कहा और पत्रिका तथा कटार उसे दे दी।

भद्रसामा उस रक्तरंजित उपहारको देखकर रो उठी। उसकी आँखोंसे मोतियोंके समान आँसू झड़ने लगे। उसने पत्रिकाके एक अंशको अपने कोमल केशोंमें और एकको कंचुकीमें खोंस लिया। इसके बाद प्यारेके हृदयरक्तसे रँगी हुई कटारको चूमकर उसने अपने मस्तकपर रक्तका तिलक लगा लिया। वह प्यारेके अनुरागके चिह्नस्वरूप सिन्दूरकी तरह शोभा देने लगा।

जयमती।

आसामके इतिहासका अध्ययन करनेसे स्त्रीचरितका एक उच्च आदर्श प्राप्त होता है। शिवसागर जिलेकी प्रातःस्मरणीया रानी जयमती सत्रहवीं शताब्दीमें सहिष्णुताका और पातिव्रत्य धर्मका जो उज्ज्वल दृष्टान्त दिखला गई है वह जगतके इतिहासमें अतुलनीय है। जयमती रानीकी अपूर्व कहानी भूतकालकी सीता

दमयन्ती, राजीमती आदि सती स्त्रियोंके पतिप्रेमकी कथाओंको स्मृतिपटपर जागरूक कर देती है।

ईस्वी सन् १६७९ में 'चामगुरीया' राजवंशका 'चुलिकफा' नामक राजा आहोमके राजसिंहासनका अधिकारी हुआ। यह राजा अल्पवयस्क और क्षीण-शरीर था, इसलिए लोग इसे लराराजा कहते थे। आसामकी भाषामें लरा शब्दका अर्थ बालक या शिशु होता है। उमरमें कम होने पर भी लराराजा बुद्धिमान् था। उस समय राज्यकी जैसी दशा थी और मंत्रियोंकी शक्ति जैसी बढ़ी चढ़ी थी, उसका विचार करके इसने राजा होनेके योग्य जो राजकुमार थे, उनको गुप्त घातकोंके द्वारा अंगहीन या प्राणहीन कर डालनेका निश्चय किया। इसे भय था कि यदि मंत्रियोंकी मुझसे न बनेगी तो ये मुझे सिंहासनसे च्युत करके किसी दूसरे राजकुमारको राजा बना देंगे। लराराजाका नृशंस कार्य चलने लगा। अनेक वंशोंके अनेक राजकुमारोंको उसने विकलाङ्ग या विकलप्राण करा डाला। दुर्बल राजा स्वभावसे ही भीरु कापुरुष और अत्याचारी होते हैं। लराराजा स्वयं दुर्बल था, इस लिए उसने इस प्रकार कापुरुषता और निर्दय-ताका आश्रय लेकर अपनी राजभोगकी तृष्णाको पूर्ण करना चाहा।

तुंगखुंगीयवंशके गोवर राजाके गदापाणि नामक पुत्रने—जो कि देवतुल्य, तेजस्वी, असाधारण बलशाली, और असीम साहसी था—लराराजाके हृदयमें भय उत्पन्न किया। गदापाणि ऐसा बली था कि उसने एक दिन तीन मत्त हाथियोंके दाँत पकड़कर उन्हें हिलने चलने न दिया था! दो चार गुप्त घात-कोंके द्वारा ऐसे पुरुषसिंहको अंगहीन करना असंभव समझकर लरा-राजाने उसके वध करनेके लिए बड़े बड़े आयोजन किये। किसी तरह यह संवाद गदापाणिको भी मालूम हो गया; परन्तु इससे उसका साहसी हृदय जरा भी विचलित न हुआ। गदापाणिकी स्त्री रानी जयमती बड़ी ही सच्चरित्रा और पतिव्रता थी। वह अपने स्त्री-सुलभ स्वभावसे पतिकी रक्षाके लिए व्याकुल होकर उससे कहीं भाग जानेके लिए विनय अनुनय करने लगी। गदापाणि पत्नीके प्रस्तावसे किसी प्रकार सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा, "मैं मृत्युसे डरनेवाला मनुष्य नहीं। तुम्हें और अपने दुधमुँहे बच्चोंको छोड़कर मैं यहांसे कभी नहीं भागूँगा।" जयमती कातर होकर बोली "नाथ! आपका वीरहृदय मृत्युभयसे कंपित नहीं हो सकता–आप मृत्युके भयको तुच्छ समझते हैं, यह मैं अच्छी तरहसे जानती हूँ किन्तु यह तो सोचिए कि राजसेवक आपको पक-

ड़करके ले जावेंगे और वध कर डालेंगे, तो हम लोगोंकी क्या दशा होगी? आपके जीवनप्रदीपके निर्वाण होनेपर आपकी यह दासी तो एक घड़ीभर भी जीती नहीं रह सकती है; तब आपके इन सोनेसरीखे बालकोंकी क्या अवस्था होगी? इसलिए मेरी प्रार्थना यह है कि आप इस पापराज्यको छोड़कर कुछ कालके लिए गुप्त हो जावें। यदि कभी जगदीश्वरके अनुग्रहसे शुभदिन आवेगा और भाग्यचक्रका परिवर्तन होगा, तो आप लौटके आ सकेंगे। आपका जीवन अमूल्य है। उसकी रक्षाके लिए अवश्य ही कोई उपाय करना चाहिए।" निदान गदापाणि पत्नीके कातर अनुरोधके आगे पराजित हो गये। गुप्तवेश धारण करके वे नागापर्वतकी ओर पलायन कर गये।

इधर गदापाणिके पकड़नेके लिए लराराजाने बहुतसी सेना भेजी। सेनाने लौटकर राजासे उसके भाग जानेका समाचार सुनाया। दुर्बल और कापुरुष राजा गदापाणिके भाग जानेसे शंकित होकर उसका पता लगानेके लिए व्याकुल हो उठा। उसकी पत्नी जयमतीके पास दूत भेज कर उसने गदापाणिका पता पुछवाया, परन्तु जयमतीने अपने पतिके सम्बन्धमें कोई भी बात नहीं बतलाई। उसने कहला भेजा कि स्वामीका पता उसकी स्त्रीके द्वारा कदापि नहीं मिल सकेगा। दूतके मुँहसे यह बात सुनकर लराराजा क्रोधसे पागल हो गया। उसने आज्ञा दे दी कि जयमतीको इसी समय कैद करके ले आओ। आज्ञा पाते ही राजसेवक दौड़े गये और जयमतीको कैद करके राजाके समीप ले आये। लराराजाने पूछा "तेरा पति कहाँ छुप रहा है, शीघ्र बतला दे—नहीं तो बेतोंकी मारसे तुझे यमलोकका रास्ता बतला दिया जायगा।" जयमतीने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया:—

"यह मैं पहले ही दूतके द्वारा आपसे कहला चुकी हूँ कि अपने स्वामीका पता मैं कभी नहीं बतालाऊँगी, फिर आप मुझसे बार बार क्यों पूछते हैं? मेरी प्रतिज्ञा अटल तथा अचल है। आप मेरे शरीरपर यथेच्छ अत्याचार कर सकते हैं; परन्तु मेरे मनके ऊपर मेरा ही सम्पूर्ण अधिकार है—अन्य किसीका नहीं है। यह नश्वर शरीर चिरस्थायी नहीं है, यह मैं अच्छी तरहसे जानती हूँ। इसलिए आप मेरे द्वारा पतिके पता पानेकी आशाको छोड़ दीजिए।" लरा राजाने क्रोधसे हिताहितविवेकशून्य होकर आज्ञा दी कि "जयमतीको ले जाओ और इसे राजमहलके सम्मुख बाँध करके बिना विराम लिये बेतोंकी मार मारो! इतना याद रक्खो कि यह मरने न पावे, केवल मारसे इसके शरीरको यंत्रणा

पहुँचती रहे। जबतक यह अपने पति का पता न बतलावे, तबतक बराबर इसे इसी प्रकारकी शास्ति देते रहो—जैसे बने तैसे इससे गदापाणिका पता पूछ लेना है।"

मूढ़ राजाने अपने क्षुद्र, दुर्बल और पशुहृदयको आदर्श मानकर संसारके समस्त मानवहृदयोंका अनुमान किया था। उसने सोचा था कि जयमती बेतोंकी मारके कष्टसे अपने पतिका पता बतला देगी। किन्तु दिनपर दिन जाने लगे, जयमतीने असह्य अत्याचारोंको सहन करके भी गदापाणिके सम्बन्धमें एक शब्द भी ओठोंसे बाहर न निकाला। देशकी सारी प्रजा राजाके पैशाचिक अत्याचारको देखती हुई जयमतीके लिए चुपचाप आँसू बहाने लगी। उस समय देशमें शक्तिशाली पुरुषोंका अभाव था, मंत्रीगण भी आपसी कलहके कारण दुर्बल हो रहे थे, अतएव राजाके अत्याचारका निवारण नहीं हो सका।

जयमतीके ऊपर जो अत्याचार हो रहा था, उसका समाचार क्रमसे नागा-पर्वतपर गदापाणिके कानोंतक भी पहुँच गया। उसे सुनते ही वे लराराजाकी पापपुरीकी ओर चल पड़े और वेष छुपाकर जयमतीके पास आकर बोले:—"राजकुमारी, तू व्यर्थ ही क्यों इतना कष्ट सहन कर रही है? स्वामीका पता बतलाकर इस यातनासे अपना पिंड क्यों नहीं छुड़ा लेती?" जयमती उस समय नेत्र बन्द किये हुए ईश्वरका और स्वामीके चरणोंका ध्यान करती हुई चुपचाप बेत खा रही थी। इसलिए गदापाणिकी बात उसके कर्णगोचर न हुई। गदापाणि इसके पश्चात् एक बार फिर जयमतीके पास आकर बोले:—"हे देवी, स्वामीका पता बतलाकर अपनी छुट्टी क्यों नहीं करा लेती? व्यर्थ कष्ट पानेसे क्या लाभ है?" अबकी बार जयमतीने गदापाणिको देख लिया और पहचान भी लिया। वह शंकित-चित्त होकर सोचने लगी—जिसके लिए इतना कष्ट और इतना अपमान सहन कर रही हूँ और जिसकी रक्षाके लिए मैंने अपना जीवन भी उत्सर्ग कर दिया है, वह यदि यहाँ स्वयं ही आकर अपनेको पकड़ा देगा, तो सब ही व्यर्थ गया समझना चाहिए। जयमतीको रुलाई आ गई। असहनीय अत्याचार और पीड़नसे जिसकी शान्ति नष्ट न हुई थी, घोरतर वेत्राघातसे जर्जरित होकर भी जो प्रशान्त मूर्ति धारण करके स्वामीके पवित्र चरणोंका ध्यान करती हुई दिन काटती थी, उसका अबकी बार धैर्य च्युत हो गया। मेरा सारा ही उद्देश्य विफल हो गया, यह देखकर वह अस्थिर हो उठी और बोली—"जब मैं कई बार कह चुकी हूँ कि मैं अपने स्वामीका पता कभी

न बतलाऊँगी तब फिर यह पुरुष मुझे बार बार पूछकर क्यों तंग करता है? यह यहाँसे चला क्यों नहीं जाता? सती स्त्री अपने स्वामीके लिए सब कुछ सहन कर सकती है। स्वामीके कल्याणके लिए अपना प्राण दान कर देना भी सती नारीका कर्तव्य है।" इन वाक्योंके उच्चारण करते समय जयमती गदापाणिकी ओर अतिशय कातर दृष्टिसे देखकर उन्हें उस स्थानसे शीघ्र चले जानेके लिए सकरुण प्रार्थना करती थी। गदापाणि इस समय भी सतीके सकरुण अनुरोधकी उपेक्षा नहीं कर सके, वहाँसे उसी समय चले गये। जयमतीपर बेतोंकी मार बराबर पड़ती रही।

गदापाणिके चले जानेपर लराराजाके निर्दय अनुचर और भी १४—१५ दिन जयमतीपर अत्याचार करते रहे। इस तरह सब मिलाकर २१-२२ दिन दुस्सह अत्याचार सहन करके और उस यंत्रणापर भ्रूक्षेप मात्र भी न करके उस परम साध्वीका प्राणपखेरू अपने लहूलुहान शरीरको छोड़कर उड़ गया और संसारके इतिहासमें अतुलनीय सहिष्णुता और पातिव्रत्यका एक जाज्वल्यमान उदाहरण अंकित कर गया।

अपनी साध्वी पत्नीका स्वर्गारोहण-संवाद पाकर गदापाणिसे फिर स्वस्थ न रहा गया। वह शीघ्र ही लराराजाके दुष्कर्मोंका प्रतिफल देनेके लिए कटिबद्ध हो गया और एक बलशालिनी सेनाको एकत्र करके लराराजा पर चढ़ गया और उसे राज्यच्युत करके आप सिंहासनका अधिकारी हो गया। इसके पश्चात् उसने लराराजाको मारके उसके पापोंका उपयुक्त प्रायश्चित्त दिया।

गदापाणिने गदाधरसिंह नाम धारण करके ईस्वी सन् १६८१ से १६९५ तक राज्य किया। पिताकी मृत्युके अनन्तर उसके पुत्र रुद्रसिंहने राज्यसिंहासनको सुशोभित किया। रुद्रसिंह आसामका एक सुप्रसिद्ध राजा हुआ। उसने अपनी माताकी कीर्तिको चिरस्मरणीय करनेके लिए जिस स्थानपर जयमतीपर अत्याचार किया गया था, वहीं 'जयसागर' नामका विस्तृत तालाब खुदवाकर और उसीके समीप 'जयदोल' नामका एक देवमन्दिर निर्माण करवाकर निजमातृभक्तिका परिचय दिया। शिवसागर जिलेके जयसागर तालाबका निर्मल जल आज भी वायुके झकोरोंसे नृत्य करता हुआ जयमतीकी कीर्तिकहानी, रुद्रसिंहकी मातृभक्ति और आसामके गतगौरवका प्रचार करता दिखलाई देता है।

ऋण-शोध ।

(१)

भाग्यके फेरसे कमलाप्रसादको नौकरी करनी पड़ी । वह बिलकुल गरीबका लड़का न था–उसका पिता एक ऐसी जायदाद छोड़ गया था कि यदि वह नौकरी न करता, तो भी आनन्दसे अपने दिन बिता सकता । परन्तु पिताकी मृत्यु होते ही समस्त जायदाद उसके बड़े भाई बिहारीलालके हाथ लगी । उस समय कमलाप्रसादकी उमर बहुत छोटी थी । बिहारीलालने जायदाद पाते ही उसे थोड़े ही दिनोंमें फूँक दी । उसकी बुरी चालचलनका और कुसङ्गका यह परिणाम हुआ कि घरकी सारी जायदाद बिक गई और अन्तमें रहनेका घरद्वार भी उसने गिरवी रख दिया; तो भी उसकी आँख न खुली । अपनी मुराद और शौक पूरा करनेके लिए वह चोरी तक करने लगा और एक बार गिरफ्तार होकर उसे जेलकी हवा भी खानी पड़ी । जेलसे छूटते ही वह न मालूम कहाँ चला गया–किसीको उसका पता न लगा। गाँवके सब आदमी उससे निश्चिन्त हो गये–उनके सिरसे मानो एक आपत्ति टल गई । परन्तु उसकी माताको उसके जानेसे जो विषम पीड़ा हुई उसे वह ही जानती थी–वह बिहारीके लिए रातदिन रोने लगी ।

इस समय गृहस्थीका सारा भार कमलाप्रसादके ऊपर पड़ा । कमलाप्रसाद अभी लड़का है, वह गृहस्थीके कामकाजोंसे बिलकुल अनजान है । दोनों वक्त दो ग्रास खानेकी बात तो दूर रही उसे अपना मस्तक रखने तकको भी कहीं जगह नहीं है, इसलिए उसे नौकरी करनेकी चेष्टा करनी पड़ी । बड़ी कठिनाईसे उसे एक दूर ग्राममें नौकरी मिल गई । वह अपनी मा और बहिनको छोड़कर अपनी नौकरीकी जगह चला गया । जाते समय माने उसका हाथ पकड़के कहा "बेटा, बड़े भाईकी खबर न भूल जाना–हाय! मेरा प्यारा बेटा कहाँ गया !" ऐसा कहते कहते उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गई। कमलाप्रसादने माको ढाढस बँधाकर कहा–"मा, चिन्ता न करो–मैं भैयाका पता जरूर लगाऊँगा और उसे बहुत जल्दी तुम्हारे सामने ला कर खड़ा कर दूँगा।"

कमलाप्रसाद अपनी मातासे यह बात कह तो आया; परन्तु भैयाका पता लगाना उसके लिए बिलकुल असंभव था। वह सारे दिन कामकाजमें फँसा रहता

था, फिर खोज करे तो कब ? रहरहकर–बीचबीचमें उसका मन अपनी माताके शोकसे कातर हो उठता था; परन्तु वह क्या करे–निरुपाय था । वह सोचता था कि यदि कोई दिन ऐसा आवे कि दूसरेकी दासवृत्ति न करना पड़े तो अवश्य भैयाकी खोज करके अपनी माका दुःखमोचन कर सकूँगा–नहीं तो इस जन्ममें तो कुछ आशा नहीं ।

कमलाप्रसादका मालिक कमलाप्रसाद पर अंतःकरणसे स्नेह करता था । एक बड़े घरका लड़का आपत्तिमें पड़कर नौकरी करने आया है ऐसा सोच करके उसके मनमें सहानुभूति भर आती थी और वह सब तरहसे कमलाप्रसादकी भलाईकी चेष्टा किया करता था। मौके मौकेपर कमलाप्रसाद जो दूसरा काम करता था उसके बदलेमें वह उसे अलहिदा मेहनताना देता था । इसके सिवा मालिकके घरपर जो उत्सवादि होते थे उनमें भी दूसरे नौकरोंकी अपेक्षा कमलाप्रसादको अधिक पारितोषिक मिल जाता था । इसतरह कुछ ऊपरी आमदनी हो जानेके कारण वह अपनी मा, बहिनके खाने पीनेका खर्च निकाल करके भी थोड़ा थोड़ा रुपया एकत्र करने लगा ।

कमलाप्रसादने हिसाब लगाकर देखा कि—एक हजार रुपयोंमें उसकी रहनकी हुई जमीन और मकानका उद्धार हो सकता है । ऐसा होनेपर फिर उसे नौकरी करनेकी आवश्यकता न रहेगी–अपनी जमीनकी फसलकी आमदनीसे ही उसकी गुजर भली भाँति होने लगेगी और उस समय निश्चिन्त होकर वह अपने भाईका पता भी लगा सकेगा । बस, यदि वह अपनी जमीन, घर और भाईका उद्धार कर सका, तो फिर और क्या चाहिए ? उसकी सारी अभिलाषायें पूरी हो जायँगी ।

ये हजार रुपये कैसे और कितने दिनोंमें एकट्ठे होंगे—रातदिन वह यही सोचता रहता था । आमदनी अधिक नहीं है इसलिए थोड़ा थोड़ा करके ही बहुत दिनोंतक संचय करना पड़ेगा । यदि कोई दूसरा आदमी होता तो इसे असम्भव कहके छोड़ देता—वह कहता कि कहीं बिन्दु बिन्दु जलसे समुद्र भर सकता है ? परन्तु कमलाप्रसाद धैर्यसे इस असाध्यकी भी साधनाका प्रण करके बैठा था; इसके बिना उसका निस्तार न था ।

बहुत दिनोंतक राह देखते देखते अंतमें वही शुभ दिन आगया; इस मासका वेतन मिलते ही उसके हजार रुपये पूरे हो जायँगे । धीरे धीरे देखते देखते

वह मास भी पूरा हो गया; कमलाप्रसादके आनन्दकी आज सीमा नहीं है— अब उसके जीवनकी सारी इच्छायें सफल होना चाहती हैं ।

कमलाप्रसादके जमा किये हुए रुपये उसके मालिकके पास रहते थे । जिस दिन एक हजार रुपये पूरे हुए उसी दिन वह अपने मालिकके पास विदा लेनेके लिए पहुँचा। वह इसकी सब बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ । कमलाप्रसादके दासत्वके दिन पूर्ण हो गये, यह जानकर उसके मनका बोझा हलका हो गया ।

कमलाप्रसाद अब अधिक विलम्ब नहीं कर सकता–इतने दिनों तक धैर्य रखकरके भी अब उसका मन रंचभर भी धीरज नहीं रख सकता। इसी समय वह रुपये लेकरके अपने गाँवको लौटना चाहता है। उसके मालिकने कहा— "अच्छा तुम जाना चाहते हो तो जाओ; परन्तु इतने रुपये अकेले साथमें मत ले जाओ । रास्ता अच्छा नहीं है—चोर डाँकुओंका भय है। इस समय कुछ रुपये साथमें लेते जाओ—और फिर इसी तरह थोड़े थोड़े करके सब रुपये ले जाना ।"

कमलाप्रसाद अब ठहर नहीं सकता । इस समय तक क्या वह थोड़ा ठहरा रहा है? और अब फिर भी ठहरना—अब भी विलम्ब? अब ऐसा नहीं हो सकता। उसने कहा "क्षमा कीजिए–कुछ डर नहीं है, मैं बहुत सावधानीके साथ रुपये ले जाऊँगा ।" मालिकने एक वार फिर भी समझानेकी चेष्टा की। कमलाप्रसादने अपने मालिककी बात पहले कभी नहीं टाली थी, वह यह भी जानता था कि वे जो कुछ कहते हैं वह मेरी ही भलाईके लिए कहते हैं; किन्तु तो भी वह आज अपने मनकी अधीरताको दमन न कर सका ।

मालिकने उसके सब रुपये लाकर उसे सोंप दिये । रुपयोंको हाथमें लेते ही ऐसा मालूम होने लगा कि मानों वे उसके चिरपरिचित बन्धु हैं! वे सबके सब उसके मनमें बसे हुए हैं—देखते ही वह उन्हें पहचान सकता है! किस रुपयेमें किस जगह दाग है, कौन किस जगह घिसा है, कौन चमचमाता है तथा कौन मैला है–सब ही वह जानता है। यहाँ तक कि वह यह भी कह सकता है कि कौन रुपया उसे अपने मालिककी कन्याके विवाहके समय इनाममें मिला था और कौन पुत्रके उत्पन्न होनेके समय । बहुत दिनोंके पीछे प्यारे बन्धुके मिलनेसे जैसा आनन्द होता है रुपयोंको देखकर कमलाप्रसादको आज वैसा ही आनन्द होने लगा ।

इन रुपयोंको खूब सावधानीसे बाँधकर वह उसी रातको अपने घरकी ओर चल दिया; सबेरेतक ठहरना उसके लिए असह्य हो उठा। जाते समय उसके मालिकने कहा—"तुम अपने साथ एक हथियार लिये जाओ, न मालूम कब कौनसी आपत्ति आ जावे" ऐसा कहके उसने एक अच्छी तलवार निकालकर उसकी कमरसे बाँध दी।

कमलाप्रसाद घरसे बाहर हुआ। गाँवके बीचमेंसे जाते जाते उसके परिचित घर, घाट, रास्ता आदि उससे एक एक करके विदा लेते जाते थे और मानो वह सबहीसे मन-ही-मन कहता जाता था—अच्छा भाई, अब मैं जाता हूँ! मैं जाता हूँ!

(२)

कमलाप्रसाद जा रहा है। इस समय वह प्रसन्न नहीं है-उसे बार बार रुलाई आती है। रह रह कर एक वेदना उसके मनको दुखित कर रही है कि-मैं घर जाकर अपनी मासे क्या कहूँगा? वह कुछ रुपयोंकी आशा किये तो बैठी ही न होगी। मैं आते समय भैयाको खोजकर घर लौटा लानेका ढाढस दे आया था-मा उसी भरोसे राह देखती बैठी होगी। कुछ दूर चल कर उसने अपने मनमें सोचा-खैर, इतने दिन राह देखी है, दो दिन और सही—देशमें पहुँचते ही मैं भैयाको खोज लानेका अवश्य ही प्रयत्न करूँगा।

ग्राम पीछे रह गया। आगे एक बड़ा भयानक जंगल है। जंगलके बीचों बीच एक रास्ता है; उसी परसे वह जा रहा है। देखते देखते रात अधिक हो गई-अंधकार क्रमशः बढ़ने लगा; कहीं भी प्रकाशका चिह्न नहीं दिखाई देता। वृक्ष मानों नीचेसे ऊपरतक अंधकारकी राशिमें डूब गये हैं। अपना शरीर भी आपको दिखलाई नहीं देता। परन्तु कमलाप्रसादके मनमें इतनी उतावली है कि कोई भी बाधा उसको निरुत्साहित नहीं कर सकती; वह उस अन्धकारको ठेलता हुआ बराबर चला जा रहा है।

उस घोर अन्धकारमें चलते चलते वह कब रास्ता भूल गया, इसकी उसे कुछ भी खबर नहीं। अंतमें जब वृक्षकी डालियोंने उसके शरीरमें लगकर उसकी गति-को रोक दिया, तब वह अचानक भोंचकसा होकर खड़ा हो गया और रास्ता ढूँढ़नेके लिए चारों ओर भटकने लगा; परन्तु रास्ता नहीं मिला। खोजते खोजते वह थक गया और इधर उधर फिरते रहनेसे धीरे धीरे वह यह भी भूल गया

कि मैं किस ओरसे आया था और किस ओर जाऊँगा ! कभी कोई एक रास्ता सा दिखाई पड़ता है और उस ओर चलता है कि फिर जंगलमें जा फँसता है। इस तरह भटकते भटकते उसे अचानक किसी मनुष्यके आनेकी आहट सुनाई पड़ी–मानों उस अन्धकारको चीरता हुआ कोई उसीकी तरफ बढ़ा आ रहा है। पास आते ही कमलाप्रसादने देखा कि एक जंगली शिकारी है।

उसे देखकर कमलाप्रसादके प्राणोंमें प्राण आ गये। उसने उतावलीसे पूछा–भाई, क्या तुम मुझे रास्ता बतला सकते हो ?

शिकारीने उसे नीचेसे ऊपर तक तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर पूछा–तुम्हें कहाँ जाना है ?

कमलाप्रसादने अपने गाँवका नाम बतला दिया।

शिकारी उसको थोड़ी दूर साथ लिये हुए रास्तेपर आ पहुँचा—और फिर बोला "इसी सामनेके रास्तेसे बराबर उत्तरकी तरफ चले जाओ।"

कमलाप्रसाद उसी रास्तेसे चलने लगा। धीरे धीरे थकावटसे उसका शरीर शिथिल होने लगा–पैरोंने जवाब दे दिया। इतनेमें उसे थोड़ी दूरपर एक फूसका घर दिखाई दिया। उसमेंसे एक मंद प्रकाशकी रेखा बाहरके घोर अन्धकारके ऊपर पड़ रही है। कमलाप्रसाद धीरे धीरे उसी झोंपड़ीकी ओर चलने लगा। देखा उसमें एक स्त्री बैठी बैठी कपड़े सीं रही है। इतनी रात होनेपर भी शयन करनेकी ओर उसका कुछ भी लक्ष्य नहीं जान पड़ता। वह तन्मय होकर काम कर रही है। कमलाप्रसादने उससे कहा—"मैं थका हुआ पथिक हूँ। आज रातके लिए क्या मुझे यहाँ स्थान मिल सकता है ?

स्त्री कुछ समय इसकी ओर देखकर रह गई। फिर बड़े विस्मयसे बोली-"इतनी रातको इस रास्तेसे तुम कैसे आये ?"

कमलाप्रसाद—"मैं जंगलमें रास्ता भूल गया था—भाग्यसे एक शिकारीने मुझे यह रास्ता बतला दिया है।" इतना कहके वह बैठ गया—और खड़ा नहीं रह सका।

कुछ समय तक रमणी चुपचाप न मालूम क्या सोचती रही। कुछ इधर उधर करने लगी और अन्तमें वह यहाँ वहाँ चारों ओर देखकर दबी जबानसे बोली—"जानते हो, तुम यहाँ कहाँ आपहुँचे हो ?"

कमलाप्रसाद—(स्त्रीके मुखकी ओर देखकर) नहीं तो! यह कौनसी जगह है ?

रमणी—यह डाँकूका घर है। जिस शिकारीने तुम्हें रास्ता बतलाया है वह डाँकू है और यह उसीका घर है।

कमलाप्रसाद—(घबड़ाकर) तो अब मैं क्या उपाय करूँ ?

रमणी—उपाय तो कुछ भी नहीं दिखता—वह तुम्हारे पीछे पीछे आता होगा और आना ही चाहता है।

उसने इतना कहा ही था कि बाहरसे किसीके आनेकी आहट सुन पड़ी। स्त्रीने घबड़ाहटके साथ पथिकसे कहा—"उठो, उठो, देरी न करो"—और उसे जल्दीसे एक अँधेरी जगहमें छिपा दिया।

शिकारीने घरमें पैर रखते ही स्त्रीसे पूछा—"शिकार कहाँ है ?"

स्त्रीने कोई उत्तर न दिया—वह केवल विस्मयजनक दृष्टिसे उसके मुखकी ओर देखने लगी। शिकारीने गर्ज कर कहा—"शिकार कहाँ गई ?"

रमणी जैसे कुछ भी न जानती हो ऐसा भाव बताकर बोली—"शिकार!"

"हां, हां, शिकार।"

रमणी—(विस्मयसे) कौनसी शिकार ?

शिकारी—(अधीर होकर) मैंने बराबर उसे इसी रास्ते आते देखा है—रास्तेमें भी नहीं, घर भी नहीं, तो क्या वह उड़ गया ?

रमणी—क्या जानें ?

शिकारी क्रोधसे पागल होकर बोला "मालूम होता है कि यह तेरी ही करामात है ! अभीतक तेरा यह रोग गया नहीं ! बोल कहाँ छिपा दिया है ?" ऐसा कहके उसने जोरसे एक लात मारी। स्त्री जमीनपर गिर पड़ी—तो भी उसने कुछ न कहा।

स्त्रीको चुप देखकर उसका क्रोध बढ़ने लगा। पीटते पीटते उसने उसे अधमरी कर डाला तो भी उसने मुँहसे कुछ भी न कहा, पड़ी पड़ी सिर्फ मार खाती रही।

अब कमलाप्रसादसे न रहा गया। उसने सोचा कि अब छिपे रहनेसे काम नहीं चलता—मेरे पीछे यह बेचारी नाहक सताई जा रही है! वह झटसे बाहर आकर बोला—"इस बेचारीको तुम क्यों नाहक मारते हो ? लो, मैं यह खड़ा हूँ।"

अब स्त्रीको छोड़कर वह शेरकी तरह कमलाप्रसादपर टूट पड़ा। कमलाप्रसाद उस समय भी इतना थका हुआ था कि वह अच्छीतरह खड़ा भी न हो

सकता था। इस कारण वह कुछ भी न कर सका। डाँकूने उसका सब रुपया सहज ही छीन लिया और उसे एक फटा कपड़ा पहनाकर बाहर कर दिया। कमलाप्रसादने जरा भी 'चीं-चपड़' नहीं की, इसलिए डाँकूको उसे जानसे मार डालनेकी कोई आवश्यकता न जान पड़ी।

कमलाप्रसाद निःसहाय और सर्वस्वहीन होकर रास्तेमें खड़ा है। डाँकूने उसकी तलवार तक छीन ली है। रास्तेमें जङ्गली पशुओंका भय था, इसलिए कमलाप्रसादने कातरस्वरसे कहा—"मेरा तुम सब कुछ ले चुके, ले लो; परन्तु मेरी तरवार तो मत लो, नहीं तो इस बिकट जंगलमें जंगली पशु मेरे प्राण ले लेंगे!"

डाँकूको कुछ दया आगई—तलवार लेकर वह कमलाप्रसादको देने लगा। अंधकारमें तलवार चमकने लगी, यह देखकर उसने कहा—"ओह! यह तो बिलकुल नई दिखती है। अच्छा ठहरो। मैं तुम्हें एक दूसरी तलवार ला देता हूँ। ऐसा कहके उसने घरमेंसे एक पुरानी तलवार लाकर कमलाप्रसादको दे दी।

(३)

दूसरे दिन सबेरे कमलाप्रसाद उदास चित्त और मलिन मुँह किये हुए अपने मालिकके द्वारपर जा खड़ा हुआ। लज्जा उसे मकानके भीतर नहीं जाने देती थी। बहुत दिनोंके कठिन परिश्रमसे प्राप्त किये हुए रुपयोंके जानेसे यद्यपि उसे दुःख हो रहा था, किन्तु मालिककी बात न माननेसे मेरी यह दुर्दशा हुई है यह बात उसके हृदयमें उस दुःखसे भी अधिक पीड़ा दे रही थी—अपना मुख दिखानेमें उसे बहुत ही लज्जा मालूम होती थी। कुछ समय बाद मालिक मकानके बाहर आया। उसने देखा कि मलिन मुख और नीचा सिर किये हुए कमलाप्रसाद खड़ा है। उसे बड़ा विस्मय हुआ! उसे ऐसा भास होना लगा कि मैं किसी जादूगरका खेल देख रहा हूँ। यह क्या वही कमलाप्रसाद है जो कल रातको बिदा ले कर घरको गया था? कमलाप्रसादकी अवस्था देखकर उसे बहुत दुःख हुआ। वह जल्दीसे हाथ पकड़के उसे घरके भीतर ले गया। कमलाप्रसादने रातकी सारी घटना कह सुनाई। मालिकने उसे चुपचाप सुन लिया—उसका जरा भी तिरस्कार न किया। कमलाप्रसाद जिस तरह गतरात्रिको काम करते करते चला गया था आज सबेरे वही

काम फिरने करने लगा। बीचकी रातका व्यापार मानो उसके लिए एक स्वप्नके समान हो गया!

डाँकूने जो पुरानी तलवार दी थी, उसे कमलाप्रसादने अपने सोनेके कमरेकी एक दीवालपर लटका दी थी। उसे देखते ही उस रातकी सारी घटना उसके नेत्रोंके सामने प्रत्यक्ष रूप धारण करके नृत्य करने लगती थी। दिनभर काम करनेके बाद रातको जब वह घर आता था, तब रुपयोंका शोक उसे फिर नया होकर पीड़ित करने लगता था और निरुत्साह उसके दिलको बिलकुल तोड़ देता था। वह सोचता था कि—"क्या अब गिरवी रक्खी हुई जमीनका उद्धार हो सकता है? और क्या अब भाईकी खोज करके मैं माताके शोकको दूर सकूँगा?" उसकी सारी आशायें—सारे भरोसे मिट्टीमें मिल गये। उस रातकी घटनाको भूलनेकी यद्यपि वह बहुत चेष्टा करता था, परन्तु वह तलवार उस दुर्घटनाके स्मरणको हररोज ताजा कर देती थी। जिस समय उस डाँकूके घरकी स्त्रीकी बात उसे याद आती थी उस समय उसका मन कृतज्ञतासे भर जाता था। मेरी रक्षा करनेके लिए उसने कितना कष्ट सहन किया! वह मन-ही-मन सोचता था कि उसके ऋणको क्या अब मैं इस जन्ममें कभी चुका सकूँगा?

अंतमें उसे उस तलवारको अपने नेत्रोंके सामने रखना असह्य हो गया। पहले वह नहीं सोच सका कि मैं उसका क्या उपयोग करूँ; परन्तु पीछे उसने उसे पुरानी चीजोंकी दूकानपर बेच आनेका निश्चय किया। गाँवमें थोड़ी दूरपर पुरानी चीजोंकी एक दूकान थी। एक दिन वह उस तलवारको लेकर वहां गया। दूकानदार वृद्ध था—उसकी आँखोंकी ज्योति कम हो गई थी। वह उस तलवारको आँखोंके बिलकुल समीप ले जाकर गौरसे देखने लगा। देखते देखते जब उसकी दृष्टि एक स्थानपर पड़ी, तब वह चौंक पड़ा और बोला—"यह चीज तो बहुत कीमती है!"

कमलाप्रसाद चुप हो रहा। दूकानदारने फिरसे कहा—"इसपर बादशाहकी छाप है—यह कीमती तलवार है!"

कमलाप्रसादने पूछा—कितने मूल्यकी है?

"डेढ़ हजारकी!"

डेढ़ हजार! कमलाप्रसाद चौंक पड़ा। यदि ऐसा है तो इससे तो उसके सारे दुःख दूर हो सकते हैं!

डेढ़ हजार रुपया पाकर कमलाप्रसादके मनमें अनेक तरहकी बातें आने लगीं। वह मन-ही-मन सोचा करता था कि समय आनेपर डाँकूकी स्त्रीका ऋण चुकाऊँगा। इस समय वह कहने लगा कि यही तो समय है! मुझे तो एक हजार रुपयोंसे मतलब है। शेष पांच सौ रुपयोंसे तो सहजहीमें इस ऋणसे ऊऋण हो सकता हूँ। और इन पांच सौ रुपयोंको पाकर वह भी उस डाँकूके हाथसे हमेशाको छूट सकती है। वह अवश्य ही उसकी खरीदी हुई दासी है। इन बातोंको वह जितना ही सोचने लगा, उसकी ऋण चुकानेकी इच्छा उतनी ही प्रबल होती गई। यह बात उसके मनमें बारबार आने लगी कि यदि मैं ऐसा न करूँगा—इस ऋणको न चुकाऊँगा, तो मेरे पापकी सीमा न रहेगी।

मालिकके पास एक हजार रुपये रख करके वह फिर चल दिया। अपने साथमें उसने केवल ५००) रक्खे। उसने निश्चय किया था कि ये रुपये उस स्त्रीको देकर घरकी ओर जाऊँगा—और रास्तेमें जो गाँव मिलेंगे उनमें भाईकी खोज भी करता जाऊँगा। उसे विश्वास था—कि भैया यहीं किसी गाँवमें गुप्तरीतिसे रहते हैं और लज्जाके मारे अपने ग्रामको नहीं लौट सकते। कमलाप्रसाद देखता है कि मेरे दुर्दिनके मेघ फट चुके हैं और सौभाग्य-सूर्य्य उदित हो रहा है—केवल एक दुःख है—यदि भाईको न ले जाकर मैं माताके पास पहुँचा तो उनसे क्या कहूँगा?

(४)

अबकी बार वह ऐसे समय रवाना हुआ कि जिससे सूर्य अस्त होनेके पहले ही उस जंगलसे पार हो जाय। परन्तु जिस समय वह डाँकूके घर पहुँचा, उस समय सूर्य अस्तोन्मुख हो रहा था—सघन वृक्षोंकी संधियोंमेंसे उसका सुनहरी प्रकाश छिटक रहा था। पक्षी अपने घोंसलोंको लौट रहे थे। समस्त वन स्निग्ध प्रकाश और कोमल कलरवसे भर रहा था।

कमलाप्रसाद उस डाँकूके घर पहुँचा। वह उस स्त्रीको गुप्तरीतिसे रुपये देना चाहता है—क्योंकि अगर डाँकूको विदित हो जायगा तो वह अवश्य उससे रुपये छीन लेगा। ऐसा सोच करके वह बिना कुछ कहे सुने एक ओर खड़ा होकर अपेक्षा करने लगा। दिनका प्रकाश धीरे धीरे मंद पड़ने लगा, तथा छायाके समान अंधकार क्रमशः उस घरको ग्रसित करने लगा। पक्षियोंका कल-रव शान्त हो गया—चारों ओर सन्नाटा छा गया। इतनेमें उस घरमें एक

दीपशिखा दिखाई दी। अधिक विलम्ब करनेकी आवश्यकता न जानकर वह जल्दीसे उस घरके अंदर चला गया। देखा कि एक मलिन शय्यापर डाँकू स्थिर हो कर पड़ा है और स्त्री उसके सिराने दीपक जलाकर बैठी है। उसे देखते ही वह विस्मित होकर उठ खड़ी हुई। कमलाप्रसादने जल्दीसे उसके पास रुपयोंकी थैली रख कर कहा—"यह लो, उस रातको तुमने मेरे लिए जो कुछ किया था उसका बदला मैं और किसी तरह नहीं चुका सकता।"

रुपयोंको देखते ही स्त्रीके मुखपर जो विषादकी छाया थी, वह मानो एकाएक दूर हो गई; वह गद्गदकंठसे बोली—"आज तुमने हम लोगोंको प्राणदान दिया! हम लोग भूखसे मर रहे थे।

रुपयोंकी बात सुनकर डाँकू भी उठकर बैठ गया। कमलाप्रसाद जाता था; डाँकूने उसे इशारा करके बुलाया। वह धीरे धीरे उसकी शय्याके निकट जाकर खड़ा हो गया।

डाँकूका हृदय कृतज्ञतासे भर आया। वह एक तो रोगोंसे घिर रहा था और इसपर भी भूखके कारण मर रहा था। इसके पहले वह अपने सम्मुख मृत्युकी छाया देख रहा था। इस निर्जनवनमें उसे कही भी कोई आशाका चिह्न नहीं दिखलाई देता था। पर यह क्या? एक दिन वह जिसका जीवन अपहरण करने गया था वही आज उसे जीवन-दान करने आया है। कमलाप्रसादके दोनों हाथोंको अपने हाथमें लेकर वह रह गया—उसके नेत्रोंमें आँसुओंकी बूँदें दिखाई देनें लगी। वह चाहता था कि कमलाप्रसादको हृदयसे लगाकर अपना हृदय शीतल करूँ, परन्तु ऐसा न हो सका—वह शिथिल होकर शय्या पर गिर पड़ा।

कमलप्रसाद चुपचाप उसके हृदयोच्छ्वासको देख रहा था। उसका हृदय भी द्रवित हो रहा था। वह उसकी शय्यापर बैठ गया। डाँकूने फिरसे उसका हाथ अपने हाथमें ले लिया—उसके मनमें अनेक बातें उठने लगीं; परन्तु उससे बोला न गया।

वह सोचने लगा—जिन लोगोंके लिए मैंने आपत्तिको आपत्ति नहीं समझी, जिन लोगोंकी प्राणरक्षाके लिए अपने प्राणों तकको मृत्युमुखमें डालनेमें मैंने कभी आगा पीछा नहीं सोचा—वे ही मेरे अनुचर आज मेरी इस बीमारीमें मेरा सर्वस्व छीनकरके मुझे मृत्युके गहरे गढ़ेमें ढकेल गये हैं; और जिसको मैं जानसे मारनेके लिए तयार था—उसीने आकर आज मेरे प्राणोंकी रक्षा की

है । यह सोचते सोचते उसका हृदय 'हाय हाय' करने लगा—उसने काँपती हुई आवाजसे कहा—"हाय ! मैं बड़ा पापी हूँ !"

इसके बाद डाँकू कुछ समय तक चुप चाप पड़ा रहा—मानों वह भीतरसे बोलनेके लिए कुछ बल संग्रह करनेकी चेष्टा कर रहा था । फिर कमलाप्रसादके मुखकी ओर देखकर वह धीरे धीरे बोला—"मेरे समान पापी इस संसारमें दूसरा नहीं—मैं नराधम हूं !" इसके बाद उसने आत्म-कहानी कहना प्रारंभ की। कमलाप्रसाद सुनने लगा । ज्यों ज्यों रात बीतने लगी त्यों त्यों घरमें अंधकार अधिकाधिक बढ़ने लगा। बाहरकी हवा वृक्षोंके प्रत्येक पत्तेसे टकरा टकरा कर 'हाय हाय' कर रही है। डाँकू अपनी आत्मकहानी रुँधे हुए कण्ठसे बराबर कह रहा है और उसे कमलाप्रसाद एकाग्रचित्तसे सुन रहा है ।

उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था । जिस समय डाँकू अपने छोटे भाई और माताकी बातें कहते कहते रो उठा, उस समय कमलाप्रसाद एकदम चौंक पड़ा और डाँकूकी छातीसे लिपटकर रोते रोते चिल्ला उठा "भैया ! भैया ! !" डाँकू पहले तो विस्मित होकर कमलाप्रसादके मुखकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखने लगा, परंतु तत्काल ही व्याकुल होकर उसने अपने दोनों हाथ उसकी ओर फैला दिये और उसे हृदयसे लगा लिया । घरकी मंद दीपशिखा एकाएक उज्ज्वल-प्रकाशमय हो उठी !

चपला ।

१ सरस्वतीके जलमें ।

एकाएक पूर आ जानेसे सरस्वती नदी बड़े वेगसे बह रही है। ईसाकी चौथी सदीकी बात है; तब भी ग्रीष्म ऋतुमें सरस्वती सूख जाती थी, किन्तु वर्षामें उसका पूर इतने प्रबल वेगसे आता था कि अच्छे अच्छे होशयार मल्लाहोंका भी उसमें नाव डालनेका साहस न होता था । थानेश्वरके बूढ़े और बच्चे सभी, अपना अपना काम काज छोड़े हुए नदीके किनारे क्रीडाकौतुक कर रहे हैं और बड़े बूढ़े उन्हें डर दिखा दिखा कर रोक रहे हैं । बच्चे किनारोंपर पानी उछाल उछालकर आनन्दित हो रहे हैं। सरस्वतीमें बारहों महीना पानी नहीं रहता

इसलिए उसमें कहीं कोई बड़ी नाव नहीं रहती, दो चार छोटी छोटी डोंगियाँ अवश्य ही कहीं कहीं किनारेके वृक्षोंसे बँधी हुई दिखलाई देती हैं।

सहसा एक बालिकाने एक डोंगीपर चढ़कर अपनी साथिनसे पुकारकर कहा— "आओ बहन, अपन एक मजेका खेल खेलें।" डोंगी पानीमें उतरा रही थी। बालिका उसे उसकी रस्सी खींचकर किनारेकी ओर ले आती थी और फिर दूसरी ओर कुछ दूरतक पानीमें ले जाती थी। यही उसका मजेका खेल था। दूसरीने डरकर कहा—"ना बहन, मुझे तो डर लगता है—मैं डोंगीपर नहीं चढ़ूँगी।" यह सुनकर पहली बालिका अपने खेलमें मस्त हो गई। कुछ देर पीछे दूसरीने कहा—"चपला, चल न? बहुत खेल लिया, अब क्या खेलती ही रहेगी?" परन्तु चपलाने सुनी अनसुनी कर दी; वह हँसने लगी और अपना मजेका खेल खेलने लगी।

भाग्यकी बात है; अचानक रस्सी खुल गई और डोंगी नदीकी प्रबल धारामें बहने लगी। जो बालिका किनारे पर थी वह चिल्लाकर बोली, "अजी कोई बचाओ! चपला बही जा रही है।" चपलाकी उमर चौदह वर्षसे अधिक नहीं थी। वह चिल्लाई नहीं—सावधानीसे डोंगीको पकड़कर बैठी रही। चिल्लाहट सुनकर बहुतसे लोग दौड़ आये, किन्तु किसीने भी उसे बचानेका साहस न किया—हाँ, कई समझदार लोग बालिकाकी मूर्खताकी समालोचना अवश्य करने लगे। इतनेमें एक बेजान-पहचानका आदमी कहींसे दौड़ता हुआ आया और नदीमें धड़ामसे कूद कर जिस ओरको डोंगी जा रही थी उसी ओरको तेजीके साथ तैरता हुआ जाने लगा। देखते देखते डोंगी और तैरनेवाला दोनों दर्शकोंकी दृष्टिसे परे बहुत दूर चले गये।

जब कोई यह न बतला सका कि यह तैराक कौन था, तब लोग तरह तरहकी कल्पनायें उठाने लगे। कोई कहने लगा अवश्य ही वह कोई देव होगा—ऐसी विपत्तियोंके समय देवता अकसर सहायताके लिए आया करते हैं! किसीने कहा—अजी नहीं, इस कलियुगमें देवता कहाँ रक्खे हैं—कोई साधु महात्मा होगा। आजकल ऐसे परोपकारके कार्य वे ही करते हैं। इसीके सिलसिलेमें पुरानी दुर्घटनाओंकी झूठी सच्ची और भी अनेक कथायें चल पड़ीं। अन्तमें दर्शकगणोंने लड़के बच्चोंको डाँट दपट दिखलाते हुए अपने अपने घरोंका रास्ता लिया।

थानेश्वरमें चपलाके लिए शोक करनेवाला कोई न था, उसके माता पिता बचपनमें ही मर गये थे। एक बहुत दूरका सम्बन्धी था, उसने उसे दया करके अपने घरमें लाकर पाल लिया था। चपलाके प्रतिपालककी विमला नामकी एक कन्या थी। विधाताने उसे रूप न दिया था, परन्तु चपला सुन्दरी थी, इस अपराधसे विमलाकी माता चपलाको देख नहीं सकती थी। इस कारण आज चपलाके लिए किसीकी भूख और नींदमें कोई बाधा न पड़ी।

२ आश्रिता।

डोंगी कोई एक कोस तक बराबर बहती चली गई। इसके बाद वह एक ऐसी जगहमें जहाँ कि नदी कुछ मुड़कर बही थी किनारेके बिलकुल पास जा पहुँची। तैरनेवाला पीछे पीछे आ रहा था, उसने इसी स्थानपर डोंगीको पकड़ पाया। चपला अब भी स्थिरतासे डोंगीको पकड़े थी, उसने इस बीचमें किसी ओरको दृक्पात भी न किया था।

बलिष्ठ तैराकने जिस समय डोंगीको किनारेकी ओर ले जाकर चपलासे उतरनेके लिए कहा, उससमय उसके हाथ काँपने लगे—उससे उतरा नहीं गया। यह देखकर युवकने एक हाथसे तो डोंगीकी टूटी हुई रस्सी थाम ली और दूसरे हाथसे बालिकाको उठाकर किनारेपर उतार दिया। उस समय दोनोंके कपड़े भीगे हुए थे। चपला चल नहीं सकती, यह देखकर युवक उसे पीठ पर चढ़ाकर समीपके एक गाँवमें ले गया।

गाँवके लोगोंने दोनोंको कपड़े दिये, आहार दिया और स्थान दिया। सन्ध्या होनेके पहले वे दोनों सुस्थ हो गये—विश्राम मिलनेसे उनकी थकावट जाती रही। युवकने कहा; "चलो मैं तुम्हें तुम्हारे गाँवमें पहुँचा आऊँ।" चपला रोने लगी और बोली—"मैं अनाथा हूँ, मेरा कोई नहीं है, यदि मुझे वहाँ ले जाओगे तो जिनके घर मैं रहती हूँ, वे मुझे मारेंगे और मेरा तिरस्कार करेंगे। यह सुनकर युवक कुछ समयके लिए चिन्तामें पड़ गया। आखिर वह बालिकाको लेकर चल पड़ा और एक मैदान पार करके रातको अपनी छावनीमें जा पहुँचा।

युवकको देखते ही वहाँ बैठे हुए सब लोग उठकर खड़े हो गये और अभिवादन करके कहने लगे कि आपको ढूँढ़नेके लिए थानेश्वरको जो लोग भेजे गये

थे वे वापस लौट आये—आपका कुछ भी पता न लगा सके, इससे हम लोग बहुत ही चिन्तित हो रहे थे। अभी कुछ ही समय पहले और भी बहुतसे सवार आपकी खोजमें दौड़ाये गये हैं।

युवकने आज्ञा दी कि इसी समय दस दासियाँ बुलाई जायँ। मुँहसे शब्द निकलते ही लोग दौड़े। एक पहर रात बीतनेके पहले ही दासियाँ नियुक्त हो गईं, जुदा स्थान ठीक कर दिया गया और चपलाकी एक राजकुमारीके समान सेवा शुश्रूषा होने लगी।

युवराज चन्द्रगुप्तका यह अभिनव कार्य देखकर सेनाके वे सिपाही जो युवक थे संकेतोंसे परिहास करने लगे और जो वृद्ध थे वे कुछ अप्रसन्नसे होकर मन-ही-मन बड़बड़ाने लगे—यह अच्छी बात नहीं। सबको ही सन्देह हो गया कि यह दरिद्रा लड़की राजरानी बन बैठेगी। किन्तु राजकुमारका एक सेवक गर्वसे बोला–"श्रीमती ध्रुवदेवीके पास सम्वाद पहुँचते ही यह सारा राजरानीपना न जाने कहाँ उड़ जायगा।"

राजकुमार महाराज समुद्रगुप्तके पुत्र चंद्रगुप्त (द्वितीय) हैं और ध्रुवदेवी उनकी पत्नीका नाम है। इस समय युवराज युद्धयात्राके लिए बाहर निकले हैं और थानेश्वरके पास शिबिर डालकर ठहरे हुए हैं।

३ इतिहास।

यह चौथी शताब्दिकी घटना है। यहाँ उस समयके इतिहासकी दो चार बातोंका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। प्राचीन इतिहासका परिचय बहुत कम पाठकोंको होता है, इसलिए एक छोटीसी आख्यायिका लिखनेमें भी इतिहासकी बातोंका उल्लेख करना पड़ता है।

मौर्यकुलतिलक देवप्रिय प्रियदर्शी महाराजा अशोकके समय गान्धारसे लेकर पूर्व समुद्रतक और नेपालसे लेकर मैसूरतक सारा देश एक सूत्रमें ग्रथित हो गया था। यह बात हुई ईस्वी सन्से पहले तीसरी शताब्दिकी। इसके बाद दूसरी शताब्दिमें मौर्यवंशकी राजश्री लुप्त हो गई। पुराणोंमें लिखा है कि उस समय सुङ्गवंशके राजा भारतके सम्राट् हो गये थे; परन्तु वास्तवमें वे किसी एक छोटेसे प्रदेशके राजा थे। उस समय इस देशमें यवन, शक, तुरुष्क, और चीन जातिके लोग अपने अपने राज्य स्थापन कर रहे थे और सारा आर्यावर्त विदेशियोंके आक्रमणसे पीड़ित हो रहा था। अनार्यवंशके अन्ध्रराजा

अवश्य ही कुछ बलाढय थे; परन्तु उनका प्रभुत्व केवल दक्षिणप्रदेशमें ही था; आर्यावर्तमें (उत्तर भारतमें) तो सर्वत्र विदेशियोंका ही प्रभाव विस्तृत हो रहा था। ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दिमें जिस कालरात्रिका प्रारंभ हुआ था, उसका अन्त ईसाके बाद तीसरी शताब्दिमें हुआ–लगभग पाँचसौ वर्षतक भारतमें यह विदेशी अन्धकार बराबर फैला रहा।

इसी दीर्घकालव्यापी अन्धकारके अन्तमें गुप्तसाम्राज्यका अभ्युदय हुआ। यही भारतके सौभाग्य प्रभातकी शुभ सूचना थी। संभवतः श्रीगुप्त नामका राजा इस गुप्तवंशका प्रथम राजा था। श्रीगुप्तका पुत्र घटोत्कच हुआ। उसके राजत्वकालके बाद ईस्वी सन् ३१९ में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने नेपालसे लेकर नर्मदातकका देश जीतकर नूतन पुष्पपुर या कुसुमपुरमें राजधानी स्थापित की और इसी वर्षसे नये गुप्तसंवतका पहला वर्ष गिना गया।

प्राचीन पुष्पपुर या पाटलिपुत्र (पटना) में लिच्छवि–वंशके राजा हीनबल होकर राज्य करते थे; उनका राज्य मुख्यतः नेपालमें ही अच्छीतरह प्रतिष्ठित हुआ था। इन लिच्छवि राजाओंने गुप्तराजाओंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी और उनसे विवाहसम्बन्ध भी कर लिया था।

ईस्वी सन् ३५० में समुद्रगुप्तके राजत्वका आरंभ हुआ। समुद्रगुप्तका पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जिस समय युवराज था उसी समयकी एक घटनाका आश्रय लेकर यह आख्यायिका लिखी गई है। इलाहाबादके स्तम्भलेखसे मालूम होता है कि सारे आर्यावर्त, बङ्ग, कामरूप, कलिङ्ग और कौशल देशको समुद्रगुप्तने जीता था और केरलतकके दक्षिण भूभागमें भी वे राजाधिराज माने जाते थे। महाराज अशोकके बाद भारतवर्षके इतिहासमें ऐसे गौरवका दिन और नहीं है।

४ राजमन्त्री।

महाराज समुद्रगुप्तके प्रिय मंत्री प्रियवर्मा, कुसुमपुरके राजमहलमें बैठे हुए कुछ खत पत्र पढ़ रहे थे। इसी समय स्वयं महाराजने आकर पूछा–"राज्यमें कुशलता तो है?" प्रियवर्मा उठकर खड़े हो गये। महाराजने बैठनेका इशारा किया। दोनोंके आसन ग्रहण कर चुकनेपर मंत्रीने कहा–"महाराज, इससमय शक, यवन आदि सब ही क्षत्रिय समझे जाने लगे हैं और लोग उन्हें आदरकी

दृष्टिसे देखने लगे हैं। इसके सिवा आप लोगोंके प्रति भी ब्राह्मणोंका विद्वेष लुप्त हो गया हैं। अब हमें जीते हुए देशोंको सुरक्षित रखनेकी ओर ही विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।"

महाराज–"पंजाब और गुजरात आदि प्रदेशोंमें जबतक क्षत्रप राजा नहीं जीत लिये गये थे तबतक मैं अपने राज्यको अखंड नहीं समझ सकता था।"

प्रियवर्मा–(हँसकर) "जिस कार्यका भार युवराज चन्द्रगुप्तने स्वयं ग्रहण किया है उसमें सिद्धि होनी ही चाहिए।"

महाराज—"जब तुम्हारा पुत्र विश्वकर्मा उसका सहकारी और सहचर है तब जीतकी आशा करना ठीक ही है।"

प्रियवर्मा—"महाराज, आपके अनुग्रहकी सीमा नहीं है; मेरे बड़े पुत्र नरवर्माको मालवेका शासक बनाकर आपने मेरे वंशके गौरवको आशासे भी अधिक बढ़ा दिया है। यदि विश्वकर्मा युवराजका सहचर होकर रहेगा तो इसमें सन्देह नहीं कि इससे उसकी भलाई होगी; किन्तु राज्यके कल्याणके लिए मैं इस विषयमें एक प्रस्ताव करना चाहता हूँ।"

महाराज ध्यानपूर्वक सुनने लगे और प्रियवर्मा कहने लगे–"मुझे संवाद मिला है कि हूण नामक जाति बहुत बलाढ्य हो रही है और एसा मालूम होता है कि वह बहुत जल्द गान्धार प्रदेशपर अधिकार जमा लेगी। यह कहनेकी तो कुछ आवश्यकता ही नहीं है कि जबतक भारतकी पश्चिम सीमा सुरक्षित न होगी तबतक भारतका कल्याण नहीं। तब इस समय हूण लोगोंकी गतिविधिका निरीक्षण करनेके लिए किसी योग्य पुरुषके भेजनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। यह आप जानते ही हैं कि विश्ववर्मा रोमकादि अनेक पाश्चात्य भाषाओंको जानता है। अतएव मेरी समझमें उसे ही गान्धार प्रदेशकी ओर भेजना चाहिए।" यद्यपि महाराज अपने मन्त्रीकी स्वार्थशून्यता और हितैषणासे अच्छी तरह परिचित थे; तो भी इस प्रस्तावको सुनकर वे स्तम्भित हो रहे। अपने प्राणोंसे प्यारे पुत्रको देशहित या राजहितके लिए संकटके स्थलमें भेज देना साधारण बात नहीं। महाराजने कुछ चिन्तित होकर कहा—"सचिवश्रेष्ठ, मैं इस विषयमें कुछ विचार कर लूँ–पीछे उत्तर दूँगा।"

इसी समय सूचना मिली कि पंजाबसे युवराजका दूत आया है। दूत जिन सब कागजपत्रोंको लाया था उन्हें पढ़कर राजा और मन्त्रीको ज्ञात हुआ कि युवराजकी विजयिनी सेना बिना बाधा विघ्नके पश्चिमकी ओर जा रही है। इन

पत्रोंके साथ और भी दो पत्र आये थे। उन्हें महाराज़ने अन्तःपुरमें पहुँचा दिया। इनमें एक तो माता दत्तदेवीके नामका था और दूसरा युवराज्ञी ध्रुवदेवीके नामका। युवराजने ध्रुवदेवीके पत्रमें यह भी लिखा था कि "तुम शायद समझती होगी कि मैं बड़ी ही रूपवती हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि थानेश्वरसे मैं जिस चतुर्दशवर्षीया कुमारीको नदीसे उद्धार करके लाया हूँ उसे देखकर तुम्हारी आत्मप्रशंसा अवश्य ही कुछ कम हो जायगी।"

५ चपलाकी बात।

क्षत्रप राजा रुद्रसेनने युद्ध किये बिना ही सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की; परन्तु इसके लिए युवराजको अपने पिताकी अनुमतिकी आवश्यकता हुई और इसलिए जबतक पुष्पपुरसे कोई उत्तर नहीं आया, तबतक उन्हें अपनी सेनासहित भरुकच्छ या भड़ोचमें छावनी डालकर पड़े रहना पड़ा। जिस समय युवराजने चपलाका उद्धार किया था, तबसे अबतक तीन महीने हो गये थे। इस बीचमें युवराजकी चपलाके साथ कितनी घनिष्ठता बढ़ गई थी, इसका थोड़ासा परिचय देना आवश्यक है।

चपलाको चित्रविद्या सिखलानेके लिए एक यवनी नियत कर दी गई थी। चपलाको पहलेसे ही इस विषयका शौक था—वह जो कुछ देखती थी उसीका चित्र बनानेका प्रयत्न करती थी। इसके सिवा उसने पहले इस विषयकी थोड़ी बहुत शिक्षा भी पाई थी। इसीलिए युवराजने उसके लिए चित्रशिक्षाकी व्यवस्था करना उचित समझा।

एक दिन चपला कोई चित्र बना रही थी—इतनेमें युवराज चन्द्रगुप्तने जाकर पूछा—"चपला आज क्या बना रही हो?" चपलाने जल्दीसे चित्रको अपने अंचलके नीचे छुपा लिया और कहा—"मैं आपको कभी न बतलाऊँगी?" यवनीने हँसकर कहा—"आज यह एक नाक बना रही है; कहती है कि पहले नाक बनानेका खूब अभ्यास कर लूँगी और फिर आपकी एक तसबीर खीचूँगी।" चपला हँसने लगीं। युवराजने मुसकराते हुए कहा—"हमारे नाकने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम इस तरहसे उसे बना-बनाकर मिटाती हो?" चपलाने यवनीका हाथ दबाकर कहा—"परन्तु तुम वह बात मत कह देना!" युवराजने पूछा—"वह बात क्या है?" चपलाके चार छह बार 'ना ना' कहनेपर भी यवनीने कह दिया—"चपला कहती थी कि आपका नाक यदि बिगड़ जायगा तो

देवी नाराज हो जायँगीं।" चपलाको बड़ी लज्जा मालूम हुई। युवराजके चले जानेपर उसने यवनीसे कहा–"मेलिना, तुम बड़ी बुरी हो।"

और एक दिनकी बात है कि चपला और मेलिनामें इस बातपर तर्कवितर्क हो रहा था कि युवराजके विश्ववर्मा और नन्दिभद्र इन दो कृपापात्रोंमें कौन अच्छा है और कौन बुरा। इतनेहीमें युवराज कुशलप्रश्न करनेके लिए आ पहुँचे। चपला पहले ही बोली–"अच्छा आप ही बतलाइए क्या नन्दिभद्र अच्छा आदमी नहीं है?"

युवराज—अच्छा आदमी तो है ही, तभी तो तुम्हें प्रतिदिन पिस्ता और बदाम दिया करता है।

चपला—वह पिस्ता बदाम नहीं देता, तो भी मैं उसे अच्छा आदमी समझती।

मेलिना—वह अच्छा आदमी नहीं है, यह तो मैं कहती नहीं; परन्तु मेरा कथन यह है कि विश्ववर्माके समान अच्छा आदमी शायद ही कोई हो।

चपला—(युवराजसे) देखिए, विश्ववर्मा इसकी ग्रीक भाषा जानते हैं न, इसीलिए यह पक्षपात कर रही है।

और एक दिनकी बात सुनिए। राजधानीसे सन्धिका प्रस्ताव आनेके पहले महाराजका एक आज्ञापत्र आया था कि विश्ववर्माको गान्धारकी ओर गुप्तचर बनकर जाना होगा। इस आज्ञाको पाकर युवराज बहुत ही चिन्तित हो रहे थे। एक दिन वे तरह तरहकी चिन्तायें कर रहे थे कि इतनेमें चपलाने आकर कहा—"मुझे एक सोनेका पदक चाहिए है।" सरला बालिकाकी प्रार्थनासे सन्तुष्ट होकर युवराजने पूछा—"किस तरहका पदक?" चपलाने चित्र बनाकर बतला दिया कि इस आकारका। "अच्छा, तुम जाओ पदक शीघ्र ही तयार हो जायगा।" यह कहकर युवराज फिर चिन्तामग्न हो गये। चपलाको यह सह्य न हुआ। उसने अप्रसन्न होकर मुँह भारी कर लिया। यह देखकर युवराजको हँस आया और उन्हें उसके साथ मनोरंजक वार्तालाप करनेके लिए लाचार होना पड़ा।

६ नूतन चिन्ता।

प्रसिद्ध विद्वान् बुद्धघोषने उस समय त्रिपिटककी टीका लिखी थी या नहीं यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि

वे प्रसिद्ध उपदेशकके नामसे विख्यात हो चुके थे। एक दिन बुद्धघोष युवराज चन्द्रगुप्तको भगवान् बुद्धदेवके माहात्म्यका अनुरागी बनानेके लिए उनके शिविरमें आकर उपस्थित हुए। युवराज उनके साथ सारे दिन धर्मविषयक वार्तालाप करनेके पश्चात् सन्ध्याके कुछ पहले चपलाका संवाद लेने गये; परन्तु चपला इसके पहले ही मेलिनाके साथ बुद्धघोषके दर्शन करनेके लिए चली गई थी। चन्द्रगुप्तने देखा कि चपलाका छोटासा कमरा सूना पड़ा है और उसमें उसके बनाये हुए कई चित्र इधर उधर पड़े हैं। राजकुमारको उन्हें देखनेका कुतुहूल उत्पन्न हुआ। वे कमरेके भीतर चले गये। एक ओर एक चौकीपर वह नया बनवाया हुआ सुवर्ण-पदक रक्खा था। पदक बिलकुल नये ढँगका था। यदि कुछ बड़ा न होता तो उसे इस समयका 'लाकेट' कह सकते थे। उसके ऊपर एक सुन्दर पक्षीका चित्र जड़ा हुआ था। युवराजने ध्यानपूर्वक चित्र देखते देखते पदकका ढक्कन खोल डाला और देखा कि उसके भीतर भी एक छोटासा चित्र है! उसे देखते ही वे चौंक पड़े और धीरेसे उसे बन्द करके जहाँका तहाँ रखके जल्दीसे कमरेके बाहर हो गये। कुछ दूर जानेपर उन्होंने देखा कि मेलिना और चपला आ रही हैं। युवराजने पूछा "तुम कहाँ गई थीं?" चपला बोली, "मैंने सोचा था कि कोई एक विचित्र प्रकारका जन्तु होगा; परन्तु देखा तो दो हाथों और दो पैरोंका मनुष्य ही निकला! हम दोनों बुद्धघोषको देख आईं।" चन्द्रगुप्तने हँसकर कहा–"चपला, बुद्धघोष बड़ा भारी विद्वान् और महात्मा है।" तब चपलाने गंभीर होकर बुद्धघोषको परोक्ष प्रणाम कर लिया।

चन्द्रगुप्तने आज देखा कि चपलाकी चञ्चलताके भीतर स्थिरता और गंभीरता भी है। उन्होंने बालिकाकी ओर स्नेह दृष्टि डालकर कहा–"चपला तुम और कितने दिन यहाँ रह सकोगी?" चपलाने गंभीर होकर कहा "मुझे अब यहाँ अच्छा नहीं लगता, मैं कुसुमपुर देखना चाहती हूँ और श्रीमती ध्रुवदेवीके देखनेकी तो मुझे बहुत ही उत्कण्ठा हो रही है।" युवराज बोले–"तुमने तो उन्हें कभी देखा नहीं है, फिर यह कैसे निश्चय कर लिया कि वे तुमपर प्रेम करेंगीं?" चपलाने अपनी बड़ी बड़ी आँखें युवराजकी ओर करके कहा–"निश्चय! वे मुझपर खूब प्यार करेंगीं।" यद्यपि युवराज इस बातको जानते थे; परन्तु बालिकाका यह प्रगाढ़ विश्वास देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस प्रसन्नताके बीचमें युवराजके हृदयमें चिन्ताका भी उदय हो आया। सन्धिका प्रस्ताव अनुमोदित हुआ या नहीं, और विश्ववर्माको गान्धारकी ओर कुछ समय पीछे भेजनेमें कुछ हर्ज तो नहीं होगा, यही उनकी चिन्ताका विषय था।

७ हूण-संवाद ।

विश्ववर्माने युवराजसे कहा—"महाराजके आदेशकी उपेक्षा करके यहाँ बैठे रहना मुझे पसन्द नहीं। जब सन्धिका प्रस्ताव अनुमोदित हो गया है तब आप सन्धि स्थापित करके राजधानीको चले जाइए। मैं केवल एक नौकरको लेकर गुप्त वेशसे गान्धारकी ओर रवाना होता हूँ।" यद्यपि विश्ववर्माकी बातको टाल देना असंभव था; तो भी युवराजने कहा—"इस विषयमें मैंने एक दूसरा प्रस्ताव किया है, उसके लिए कुछ दिनों और ठहर जानेमें क्या हानि है?" विश्ववर्माने कहा—"युवराज, महाराजने बहुत कुछ सोच विचार कर यह आज्ञा दी है, उसका पालन न करके दूसरे प्रकारका प्रस्ताव करनेसे कर्मभीरुता प्रकट होगी। इसके सिवा जिस कामके लिए यह आज्ञा हुई है उसका गुरुत्व और महत्त्व हमें स्वयं अनुभव हो रहा है। उस दिन श्रमणकुमार जावने जो कुछ कहा था उससे भी मालूम होता है कि अवश्य ही हूणोंका प्रभाव बढ़ रहा है। इस लिए इस समय व्यर्थ समय खोना एक प्रकारका राजद्रोह करना है।" युवराजने विषण्ण चित्तसे कहा—"अच्छा, तुम्हारी इच्छा।" इन शब्दोंके कहनेमें युवराजको बहुत कष्ट हुआ।

विश्ववर्मा युवराजसे विदा लेकर एक वृक्षकी छायामें जाकर बैठ गये और आकाशमें तारागणोंकी ओर देखते हुए विचार करने लगे। विश्ववर्माने टालिमीके ग्रन्थोंका अध्ययन किया था—अनेक नक्षत्रोंको वे अच्छी तरह पहचानते थे। इस लिए जब वे आकाशकी ओर देखते हुए बैठते थे तब उनके इस काममें कोई वाधा नहीं डालता था। कुछ समयके बाद विश्ववर्माने उस महामहिमामयको सजल नयन होकर नमस्कार किया जो सारे नक्षत्रोंका पति और सारे मनुष्योंके भाग्यका नेता है। यद्यपि मेलिनाको छोड़कर और किसीको भी यह बात मालूम नहीं थी, तो भी यहाँ साफ साफ कह देनेमें कुछ हानि नहीं है कि विश्ववर्माका चपलाकी आनन्दमयी प्रतिमापर अतिशय अनुराग हो गया था। कर्तव्यके

अनुरोधसे वे गान्धार जाते अवश्य हैं; परन्तु चपलाके लिए उनका मन उद्विग्न हो रहा है। यह विचार करके तो उनके हृदयमें बड़ी ही पीड़ा होती है कि चपला मेरे प्राप्तिके क्षेत्रसे बिलकुल बाहर, बहुत दूर है—उसका पाना एक प्रकारसे असंभव है। और यदि मैं चपलाका प्रणयप्रार्थी बनूँगा तो मुझे युवराज-की मित्रतासे हाथ धोना पड़ेगा। बहुत कुछ सोच विचार कर अन्तमें उन्होंने मन–ही–मन संकल्प किया कि राज्यकी सेवाके लिए, भारतवर्षकी भलाईके लिए और कर्तव्य-पालनके लिए मैं अपने मनकी व्यथा मनमें ही छुपाकर रक्खूँगा।

८ महाराजकी युद्धयात्रा।

युवराज जिस समय राजधानीमें पहुँचे, उस समय दक्षिण प्रदेशसे समाचार आया कि मालवेकी सीमापर चेर राजाके विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो गया है। इस विद्रोहके करनेवाले नम्बूरि और नायाबे लोग हैं। इतिहासमें इस विद्रोहका समय ईस्वी सन् ३८९ है। युवराज बहुत दिनोंके प्रवाससे लौटे थे, इसलिए अबकी बार महाराज समुद्रगुप्तने स्वयं ही दक्षिणापथको गमन किया। इस विद्रोहकी सुविधा पाकर महाराजने यह भी निश्चय किया कि चेर राज्यको जीत-कर सिंहलद्वीपतक युद्धयात्रा की जाय और इसलिए बहुत बड़ी सेनाके साथ उन्होंने राजधानीसे प्रयाण किया।

इस यात्रामें महाराजको दो वर्ष लग गये। इस बीचमें राज्यका सारा काम-काज युवराज चन्द्रगुप्त ही देखते थे। युवराजको विश्वास था कि जहाँ प्रियवर्मा जैसा मंत्री है, वहाँ राज्यशासन करना बहुत ही सहज काम है। जिस समय विश्ववर्मा हूणोंकी गतिविधिका अच्छीतरहसे निरीक्षण करके राजधानीको लौटे उस समय महाराज सिंहलविजय करके लौट आये थे; पर इस यात्रामें उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था, इस कारण अब भी राज्यका सारा कामकाज युवराज ही देखते थे।

सिंहलजय होनेके लगभग तीन वर्ष पीछे मालवेके शासनकर्ता नरवर्माका दे-हान्त हो गया। प्रियवर्माका एक तो बुढ़ापा था और उसपर यह दारुण पुत्र-शोक! अब वे कभी किसी जरूरी कामके लिए ही दरबारमें आते हैं, नहीं तो अपने घर ही रहा करते हैं। मालवेका शासनकर्ता कौन बनाया जावे, इस विष-यमें युवराज चन्द्रगुप्तने जो प्रस्ताव किया, उसका महाराज समुद्रगुप्तने बड़ी प्रसन्नतासे अनुमोदन किया। इस प्रस्तावकी बात आगेके परिच्छेदमें कही जायगी।

९ नूतन–पुरातन ।

दोपहरको भोजन करनेके बाद प्रियवर्मा एक कमरेमें शयन कर रहे हैं और एक छोटासा बच्चा उनकी निद्रामें विघ्न डाल-डालके आनन्ददान कर रहा है। बच्चा वृद्ध मंत्रीका नाती है। यह तीन वर्षका बालक वृद्धकी छातीके सफेद बालोंकी एक, पांच, तीन कहकर गिनती करता है; मुँहमें उँगली डालकर देखता है कि बाबाके दाँत क्यों नहीं हैं, और पैजना पहने हुए छोटे छोटे पैरोंकी धूलसे उनके सारे शरीरको मैला करता है। वे शिशुके करस्पर्शसे आनन्दवश होकर नेत्र मूँद लेते हैं और जागते हुए भी स्वप्न देखते हैं। बालक 'बाबा बाबा' बोलता है और वे कुछ समयके लिए बुढ़ापेको भूलकर अतीत यौवनके अतीत तीरका शैशवसुख स्मरण करने लगते हैं। उन्हें ऐसा मालूम होता है कि मैं फिरसे जन्म ग्रहण करके बालक हुआ हूँ और बालकोंके साथ खेल रहा हूँ। दिनमें गहरी नींद लेनेके बाद जिसतरह दिन-ढले प्रभातकालका भ्रम होता है, वृद्धको भी ऐसा ही भ्रम हो रहा है।

वृद्धमंत्री जिससमय पुनर्जन्म ग्रहण करके स्वप्नमें मग्न हो रहे थे उसीसमय बच्चेकी माताने देखा कि बच्चा बड़ा उत्पात मचा रहा है। वह उसे उठा लानेके लिए आई; परन्तु वह उसके पास गया ही नहीं। बहुत कुछ समझाया बुझाया, पर उसने एक भी न सुनी। युवती शायद यह नहीं जानती थी कि इस संसारमें बूढ़े बाबाके जैसा मिष्ट पदार्थ दूसरा नहीं है! कुछ समय ठहरकर युवती बालकको जबर्दस्ती खींचकर गोदीमें लेनेके लिए चली। अबकी बार बालकने एक झटकेसे उसके गलेका हार तोड़ डाला। विजयी बालकने हार छोड़कर जिससमय माके बाल पकड़े, उस समय वृद्ध मंत्री स्वप्नसे जाग गये। वे बोले—"रहने दे न बहू, जबर्दस्ती क्यों करती है? मुझे यह कुछ तंग थोड़े ही करता है।"

वृद्धके मुँहकी बात मुँहमें ही थी कि इतनेहीमें युवराज चन्द्रगुप्त आ पहुँचे। वृद्ध मंत्री आदरपूर्वक उठके बैठ गये और युवती किसी तरहसे अपने बाल छुड़ाकर भीतर घरमें चली गई। युवराजने हँसकर कहा—"चपला, तुम्हारा बच्चा तो बड़ी शैतानी करता है। अच्छा आओ बन्धु, मेरी गोदमें आजाओ।" युवराजने बच्चेका नाम रक्खा था बन्धु। पीछे बड़ा होनेपर भी वह बन्धुवर्माके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ; यह बात इतिहासवेत्ताओंसे छुपी नहीं है।

बन्धुको माके टूटे हारके साथ एक पदक मिल गया था; इस समय वह उसीको मनोयोगपूर्वक देख रहा था। दैवयोगसे पदकका पल्ला खुल गया और उसमेंसे एक कागज बाहर निकल पड़ा। युवराजने उसे जल्दीसे उठा लिया। यह बात युवराज बहुत समयसे जानते थे कि चपलाने विश्ववर्माकी छोटीसी प्रतिकृति (तसबीर) खींचकर पदकमें रख छोड़ी है। युवराजने हँसते हँसते उस तसबीरको पदकमें रख करके और उसे बन्द करके बच्चेको गोदमें उठा लिया। चपला लाजके मारे गढ़ गई; वह यह नहीं जानती थी कि युवराज मेरे पदककी सब बात जानते हैं।

चपलाने बाहर आकर बच्चेको गोदीमें उठा लिया और प्रियवर्माने युवराजसे बैठनेके लिए कहा। उसी समय युवराजने यह समाचार सुनाया कि विश्ववर्मा मालवाके शासनकर्ता नियत किये गये। चपला बोली–"नहीं, बाबा इस उमरमें इतनी दूर कैसे जावेंगे?" युवराजने हँसकर कहा–"इसकी व्यवस्था करनेका भार मेरे ऊपर रहा–मैं सब ठीक कर दूँगा।" तब चपलाने फिरसे कहा–"अच्छा तो यह और स्वीकार कीजिए कि आप बीचबीचमें देवीको लेकर मालवा आया करेंगे।" युवराजने स्वीकृति दे दी।

चपला अब भी उनकी आदरणीया छोटी बहू है।

कुणाल।

प्रियदर्शी महाराजा अशोकके पुत्रका नाम कुणाल था। कहते हैं कि उसके नेत्र कुणाल या राजहंसके समान सुन्दर थे, इसीलिए पिताने उसका प्यारका नाम कुणाल रक्खा था। उसे जो देखता था, वही प्यार करता था। महाराजने अपने इस मुकुलके लिए एक और मुकुल तलाश किया। इस अनुपम जोड़ीको देखकर महाराजकी सारी चिन्तायें दूर हो जाती थीं और उनका हृदय आनन्द-सागरमें लहराने लगता था। बहूका नाम था काञ्चन। काञ्चन अपने छोटेसे स्वामीके साथ हँसती खेलती, लड़ती झगड़ती, और रूठती मचलती हुई राज-प्रासादको सतत आनन्दपूर्ण बनाये रखती थी। इस तरह बहू अपने नवजीवनके मधुर दिवसोंको फूलकी पँखुरियोंके समान धीरे धीरे विकसित करती हुई आगे बढ़ने लगी। कुछ समयमें ये दोनों मुकुल अच्छी तरहसे खिल उठे।

सुन्दर कुणाल और भी सुन्दर दिखने लगा । उसके शरीरमें नवयौवनने प्रकट होकर मानो मणि-कांचनका संयोग कर दिया ।

राजकुमारको युवराजपद मिल चुका था ।

राजधानीके समीप 'सुशय' नामका एक प्रसिद्ध विहार था । एक दिन वहाँके प्रधान स्थविरने युवराजको एकान्तमें बुलाकर कहा—"वत्स, तुम्हारे ये सुन्दर नेत्र आगे नष्ट होजानेवाले हैं; इन्हें स्थिर मत समझना । नेत्र बहुत ही चंचल होते हैं । खबरदार ! कहीं इनकी चंचलताके वशीभूत न हो जाना--इनमें आस्था रखना अच्छा नहीं । अनास्था—विरागता ही सुखका कारण है ।"

* * *

वसन्त आगया है । मलय-पवन घर घरमें जाकर उसके आगमनकी सूचना दे रहा है। वृक्ष लता पुष्प आदि सब ही आनन्दमग्न दिखने लगे हैं। जहाँ तहाँ उत्सवोंकी धूम है। वृक्ष मौर गये, फूल खिल उठे और कोयलें पंचम स्वरसे गाने लगीं।

आज वसन्तका उत्सव है । सारा नगर इस उत्सवमें मानो उन्मत्त हो रहा है। उद्यानमें वसन्तोत्सवका नाटक खेला गया । प्रधान नायकका पार्ट कुणालने लिया । उसके नाट्यकौशलको देखकर दर्शकगण चित्रलिखितसे हो रहे ।

उत्सव हो चुकनेपर मुग्ध नरनारी अपने अपने घरको लौट आये, रङ्गालयमें यवनिका पड़ गई, उद्यानके दीपक टिमटिमाने लगे ।

राजान्तःपुरकी जितनी स्त्रियाँ थी वे सब ही मुग्ध हो रहीं थीं । उनमेंसे कोई तो उत्सवकी मधुरिमा पर मुग्ध थीं, कोई नाट्यकौशल पर और कोई पात्रोंके कण्ठमाधुर्य पर; किन्तु एक किसी और ही वस्तु पर मुग्ध थी और वह था कुणालका सुन्दर मुख । यह मुखमुग्धा युवती महाराज अशोककी दूसरी महाराणी तिष्यरक्षा थी !

सब लोग अपने अपने घर आ गये; परन्तु मुग्धा नहीं आई । वह अपने शरीरको वसन्तकी हिल्लोलोंमें डूबता उतराता हुआ छोड़कर—फूलोंकी सुगन्धि और चन्द्रमाकी चाँदनीमें पागल होकर राजमहलके बाहर खड़ी हो रही ।

कुणाल घर आ रहा था । राजमहिषी रास्ता रोककर खड़ी हो गई । कुणाल अपनी विमाताके आवेशपूर्ण नेत्रोंकी ओर देखकर काँप गया ।

वह आँखें नीची करके खड़ा रहा—ऊपरको सिर नहीं उठा सका ।

इस मूक अभिनयका पर्दा उठते न देखकर अन्तमें तिष्यरक्षा मन मार कर अपने कमरेमें चली गई ।

(२)

तक्षशिलाके राजा कुञ्जरकर्ण पर एक लड़ाईका प्रसंग आ पड़ा। उसने सहायताके लिए अशोकके पास आमंत्रण भेजा। महाराज अशोकने इस कार्यके लिए राजकुमार कुणालको चुना।

कुणाल सेनापति बन कर तक्षशिला जा पहुँचा। राजा कुंजरकर्णने उसे अपने प्रसादमें ठहराकर स्नेहपूर्वक अतिथिसत्कार किया। कुणाल कुछ समयके लिए वहीं रह गया।

* * *

इधर महाराज अशोक एकाएक बीमार हो गये। बीमारी ऐसी वैसी नहीं थी; बड़े बड़े वैद्योंने जवाब दे दिया। जीवनप्रदीपके शीघ्र बुझ जानेकी आशंकासे महाराज अपने उत्तराधिकारीके विषयमें चिन्ता करने लगे। उन्होंने कहा—"कुणाल सब प्रकारसे योग्य है, वही मेरा राजदण्ड ग्रहण करेगा। अच्छा, उसे शीघ्र बुलानेका बन्दोबस्त किया जाय।"

यह सुनकर रानीने अपने मन-ही-मन निश्चय किया–यदि कुणाल राजा होगा तो मैं अपने अपमानका बदला कैसे चुकाऊँगी–मेरा तो सर्वनाश हो जायगा! नहीं, मैं उसे कभी राजा न बनने दूँगी। इसके बाद वह बोली:—

"नहीं, कुमारको बुलानेकी जरूरत नहीं है। आपका रोग शीघ्र दूर हो जायगा। मैं स्वयं इसका उपाय करती हूँ।"

महाराज महिषीके वचनोंसे प्रसन्न हुए। उन्हें अपने जीवनकी आशा बँध गई।

रानीने अपने हाथोंसे एक ओषधि तैयार की। उससे महाराजका रोग चला गया; वे बच गये और कृतज्ञताकी दृष्टिसे रानीके मुँहकी ओर देखने लगे।

स्त्रीके कुटिल नेत्रोंमें कुटिल हँसीकी रेखा दिख गई। वह बोली—"महाराज, आपका रोग चला गया, अब मेरी एक इच्छा पूर्ण कीजिए।"

"अवश्य पूर्ण करूँगा। कहो, तुम क्या चाहती हो?"

"मैं सात दिनके लिए महाराजका राज्य करना चाहती हूँ।"

"तथास्तु।"

राज्यसिंहासन पर बैठकर महिषीने आज्ञा दी—

"तक्षशिलाको इसी समय दूत भेजा जाय। कुणाल एक बड़े भारी अपराधमें अपराधी हुआ है। राजा कुञ्जरकर्णके पास पत्र भेजा जाय कि अपराधी कुणालके नेत्र निकलवा लिये जायँ और अन्धा कुणाल देशसे निकाल दिया जाय।"

पत्र महाराज अशोककी तरफसे लिखा गया। उसपर उनकी मुहर भी लगा दी गई!

(३)

कुञ्जरकर्णने पत्र पढ़ा और कुणालको भी उसका भयंकर संवाद सुनाया। कुणालने कहा—" पूज्य पिताकी आज्ञा—राजाकी आज्ञा मानना पुत्रका धर्म है। मैं आज्ञा पालन करनेके लिए तैयार हूँ, परन्तु एक प्रार्थना करता हूँ कि आज्ञा पालन होनेके पहले इसका संवाद देवीके कानोंतक किसी तरह न पहुँचने पावे।"

उस समय देवी काञ्चन युवराजके साथ ही तक्षशिलाके राजप्रासादमें उपस्थित थी।

ऐसा ही हुआ। देवीको मालूम न होने पाया और कुणालके आँसू भरे नेत्रोंकी पुतलियाँ निकाल ली गईं!

देवी काञ्चन कुछ कहनेके लिए कुणालके कमरेमें आ रही थी। जीनेपर चढ़ते समय उसका पैर फिसल पड़ा, सोनेका नूपुर गिर गया, चंचल हवाके झोकेसे गुलाबी अञ्चल उड़ पड़ा और शिथिल कबरीमेंसे फूलोंकी माला खिसक गई!

"स्वामिन् स्वामिन्, देखो देखो—"

इसके उत्तरमें कुमारने ज्यों ही देवीकी ओर मुँह करके कहा—"क्या है देवी!"—त्यों ही मालूम हुआ कि देवी मूर्छित होकर गिर पड़ी है!

कुणालने कुंजरकर्णसे कहला भेजा कि "देवीकी मूर्च्छा दूर होने पर महाराजकी दूसरी आज्ञाका पालन करूँगा।"

कुंजरकर्ण कुणालको देखनेके लिए आये थे। यह करुण दृश्य देखकर वे आँखोंमें आँसू भरे हुए ही वहाँसे लौट गये।

सारा दिन और सारी रात इसी तरह व्यतीत हुई। सवेरे देवीकी मूर्च्छा दूर हो गई।

—"स्वामिन्, चलो अपन इसी समय चले जावें। महाराजकी दूसरी आज्ञाका पालन करनेमें अब विलम्ब न करना चाहिए।"

"—देवी, तुम मेरे पिताके घर चली जाओ।"

"—स्वामिन्, मैंने यह आपका हाथ पकड़ लिया है। यदि आप इतने निष्ठुर हो सकें—मेरा हाथ छुड़ाकर जा सकें तो जाइए, मैं नहीं रोकूँगी।"

युवराज और युवराज्ञीका देश-निकाला हो गया। दोनों वीणा बजाते हुए, आनन्दामृतपूर्ण करुण गीत गाते हुए जहाँ तहाँ फिरने लगे और अपने दिन बिताने लगे।

इस तरह कई वर्ष बीत गये।

* * * *

एक दिन एक भिखारी और भिखारिनीने वीणा बजाते हुए पाटलीपुत्र नगरमें प्रवेश किया।

राजमहलके द्वारपर खड़े हुए पहरेदारने भिखारीको भीतर जाते हुए धमकाया—" तू राजमहलके भीतर जाना चाहता है! निकल यहाँसे!'

भिखारी और भिखारिनीको हस्तिशालामें जाकर आश्रय लेना पड़ा। रात हो गई थी, और स्थान खोजनेके लिए समय नहीं था, इस लिए लाचार होकर बेचारोंको वहीं टिक जाना पड़ा।

राजधानी दीपमालासे सुसज्जित हो रही थी। घर घरमें आनन्दस्रोत बह रहे थे। उद्यानोंमें रात्रिविकासी फूल फूल रहे थे।

देखते देखते दीप बुझ गये। कोलाहल बन्द हो गया। सारी नगरीमें सन्नाटा छा गया।

उस निस्तब्ध नगरीके मस्तकपर शुभ्र चन्द्र उदित हो गया था। हरे हरे सघन कुञ्जोंके बीच बीचमें चाँदनीसे धोई हुई धवल सौधावली चुपचाप खड़ी थी। निद्राका सर्वत्र साम्राज्य हो रहा था।

हस्तिशालाके पहरेदारकी आँखें झपने लगीं; किन्तु सोजानेमें तो उसकी कुशल नहीं है। उसने अपनी निद्रासे डरकर भिखारीसे कहा—"भाई, इस समय तुम अपनी वीणा तो बजाकर सुनाओ!"

भिखारीकी वीणाका सुर रात्रिकी निस्तब्धताको भेद कर दूर दूर तक जाने लगा—अन्धकारमें करुण वायुके साथ साथ क्रन्दन करता हुआ फिरने लगा।

महाराज सुखशय्यापर सो रहे थे। वीणाके उस करुणस्वरसे वे जाग उठे। उन्होंने मन-ही-मन कहा—यह तो चिरपरिचित स्वर है! यह वीणा कौन बजा रहा है! इसके बाद उनसे रहा नहीं गया। वे तत्काल ही उठ बैठे और पागलके समान दौड़कर बाहर आ गये!

* * *

पुत्र पिताके हृदयसे लग गया। महाराज अशोकको चिरविरहित पुत्रके सुखस्पर्शसे रोमाञ्च हो आया।

"ऐसे सुन्दर नेत्र जिसने नष्ट किये हैं, वह क्या अपने नेत्र अक्षत रखके जीवित रह सकता है?" यह कहते कहते महाराजका कण्ठ क्रोधसे काँपने लगा।

कुणालने मृदु हँसीसे हँसकर कहा—"मेरे नेत्रोंको निकलाकर यदि माताका मन प्रसन्न हुआ है, तो उनकी उस प्रसन्नताके बलसे ही मैं फिर नेत्र पा लूँगा।"

उसी समय कुणालको नेत्र प्राप्त हो गये!

इसके बाद युवराज कुणालका खूब धूमधामसे राज्याभिषेक किया गया। राज्यदण्ड धारण करके वे पृथ्वीका शासन करने लगे।

शिष्यकी परीक्षा।

(१)

एक छोटासा परन्तु सुन्दर उपवन है। वसन्तऋतुने नवीन पुष्पपल्लवरूप दिव्य वस्त्राभूषणोंकी भेट देकर उसे और भी मनोहर बना दिया है। प्रातःकालकी मधुर मन्द सुगंधित वायु बह रही है। आम्रवृक्षोंकी डालियोंपर बैठी हुई कोयलें अपनी मीठी सुरीली आवाजसे शान्तिपाठ पढ़ रही हैं। अन्यान्य पक्षीगण आनन्द कलरव करते हुए एक डालीसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी डालीपर स्वतंत्र क्रीडा कर रहे हैं।

एक जम्बूवृक्षके नीचे भगवान् बुद्धदेव ध्यानारूढ हो रहे हैं। उनकी शान्त और निर्विकार मुद्रा देखकर परम नास्तिक पुरुषोंका मस्तक भी भक्तिभावसे नम्र हो जाता है। वनके हिंस्र पशु भी अपनी क्रूरताको भूलकर उनके पवित्र शरीरका स्पर्श करते हुए चले जाते हैं। जिसके क्रोधादि विकार क्षीण हो जाते हैं, उसके प्रभावसे दुष्टसे भी दुष्ट प्राणियोंका सुष्ठु हो जाना कोई अचरजकी बात नहीं।

एक हरिणका बच्चा पद्मासनस्थ बुद्धिदेवकी जंघापर सिर रक्खे हुए आनन्दानुभव कर रहा है। एकाएक उसने अपना मस्तक ऊँचा किया और नथुने फुलाए। सूखे हुए पत्तोंपरसे आनेवाले मनुष्योंके पैरोंकी अस्पष्ट आहट सुनाई पड़ने लगी। थोड़ी देरमें वृक्षोंकी ओटमेंसे मनुष्योंकी एक टोली बाहर आई।

इस टोलीका मुखिया एक तरुण पुरुष था, जिसका मुख उज्ज्वल तथा तेजस्वी था और जिसके शरीरपर मूल्यवान् वस्त्राभूषण चमक रहे थे।

इस युवाने अपने साथियोंको दूर खड़े रहनेका संकेत किया और आप अकेला बुद्धदेवके समीप आया। उस भव्य और शान्त मूर्तिके समीप पहुँचते ही उसने साष्टांग नमस्कार किया और हाथ जोड़कर वह एक ओर खड़ा हो गया।

इस समय बुद्धदेव यद्यपि अपनी पूर्वस्थितिमें ही स्थित थे, परन्तु उनकी दृष्टि उस युवाकी तरफ थी।

बहुत समय तक प्रतीक्षा करके युवक बोला—"भगवन्! मेरा प्रणाम स्वीकार हो। मैं दूर देशान्तरसे आया हूँ। मेरा नाम जैत्रसिंह है। मैं कदंब-राज्यका युवराज हूँ और आपका अनुग्रह प्राप्त करनेके लिए यहाँ आया हूँ। जिस दिनसे मैंने आपका यशोगान सुना है, उसी दिनसे मेरा हृदय अस्थिर हो रहा है। मुझे वैभवसे घृणा हो गई है, विषयवासनाओंसे मेरा चित्त उदास रहता है, अपनी प्यारी स्त्रियों तथा मित्रोंसे अब मुझे आनन्दका लाभ नहीं होता, मुझे अध्यात्म विद्यासे अनुराग हो गया है, इसलिए आप अनुग्रह करके मुझे आध्यात्मिक उपदेश दीजिए।"

भगवान् बुद्धने राजकुमारकी ओर कृपादृष्टिसे अवलोकन किया, परन्तु मुँहसे एक शब्द भी नहीं कहा। राजकुमार फिर बोला—"भगवन्! क्या आप मेरे सन्तप्त अशान्त हृदयको अपने शीतल वचनोंके दो चार बिन्दुओंसे भी शान्त नहीं करेंगे? क्या मैं आपकी कृपादृष्टिका पात्र नहीं हूँ? स्वामिन्! मैंने अपना जीवन बाल्यावस्थासे लेकर अबतक पवित्रताके साथ व्यतीत किया है, धर्म-शास्त्रोंकी मर्यादाका मैंने आजतक कभी स्वप्नमें भी उल्लंघन नहीं किया है, अपने देशकी रीति-नीतिका मैंने भली भाँति पालन किया है, इसके सिवा मैंने धर्मग्रन्थोंका भी अध्ययन किया है। इतना सब होने पर भी क्या मैं आपका शिष्य होनेके योग्य नहीं हूँ?

"—नहीं।"

बस इतने ही अक्षर बुद्धदेवके मुँहसे निर्गत हुए।

"हे प्रभो, यदि ऐसा है, तो आपके शिष्य होनेकी योग्यता मुझमें कब आवेगी और मैं क्या करूँ जिससे मुझमें पात्रता आ जाय?"

"खोज करो। खोज करनेसे तुम्हें स्वयं मालूम हो जायगा कि तुझे क्या करना चाहिए।"

राजकुमारने खिन्नहृदय होकर पूछा,—"क्या खोज करूँ?"

बुद्धदेवकी ओरसे जब इस प्रश्नका उत्तर नहीं मिला, तब युवराजने कहा "प्रभुकी आज्ञा मुझे मान्य है। मैं खोज करूँगा। मुझे ऐसा भास होता है कि भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे हैं।"

बुद्धदेवने कहा—"संभव है–हो सकता है।"

"अच्छा तो अब मैं आपके दर्शनके लिए फिर कब जाऊँ? क्या आज्ञा है?"

"छह महीनेके पीछे।"

राजकुमार बुद्धदेवके चरणोंको साष्टांग नमस्कार करके चुपाचुप वहाँसे चल दिया। उसके साथियोंकी टोली साथ हो ली। सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य हो गया। हरिणशिशु उस दिव्य पुरुषकी जंघाके आश्रयसे फिर विश्राम करने लगा। बुद्धदेव फिर ध्यानस्थ हो गये।

(२)

पूर्व घटनाको बीते आज पूरे छह महीने हो गये। वही स्थान, वही उपवन, वही जम्बूवृक्ष और उसी वृक्षके नीचे पूर्वकी स्थितिमें ही भगवान् बुद्धदेव ध्यानस्थ हो रहे हैं। सूर्य अभी अभी डूबा है। वायु स्वेच्छानुरूप चल रही है। एका बड़ा भारी तूफान आनेके चिह्न दिखलाई देते हैं। जंगली पशु भयभीत होकर उस दिव्य मूर्तिके आश्रयमें आ रहे हैं। पक्षी वृक्षोंमें छुपकर बैठ रहे हैं और आर्त्तस्वरसे चुहचुहाट मचा रहे हैं।

थोड़ी देरमें मूसलधार पानी बरसने लगा। आँधी और पानीके जोरसे वृक्ष उखड़ उखड़ कर पड़ने लगे, परन्तु उस जम्बूवृक्षपर इस आँधी पानीका कुछ भी परिणाम न हुआ—भगवान् बुद्धदेवके शरीरपर पानीका एक बिन्दु भी आकर नहीं पड़ा! ऐसा कौन है, जो महापुरुषोंके दृढ़निश्चयकी जड़को हिला सके?

इस भयंकर आँधी पानीकी कुछ भी परवा न करके वह पूर्वपरिचित राजकुमार नियत तिथिको उस पवित्र स्थान पर आया और बुद्ध महात्माको साष्टांग प्रणाम करके बोला;—

भगवन्! मैं बड़ी भारी उत्कंठासे आजके दिनकी प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने प्रत्येक रात्रि और दिनकी गणना की है, तब कहीं यह इच्छित समय पाया है। मुझे विश्वास है कि मैं आपकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुका होऊँगा–आपकी कसौटीपर मेरा चरित्र 'सौ टंचका सोना' सिद्ध हो गया होगा। मैंने अपना जीवनक्रम बहुत ही पवित्र रक्खा है, इंद्रिय सुखोंकी परवा न करके मैंने चिरकाल तक

ध्यान, धारणा, प्राणायाम आदि किये हैं, वैभवका तिरस्कार किया है और सब प्रकारके शारीरिक, और मानसिक कष्ट सहन किये हैं। अब तो आप मुझे अपना शिष्य बनाना स्वीकार करेंगे ? ”

उत्तर मिला—“ नहीं। ”

इस उत्तरसे खिन्न होकर राजकुमारने अपना मुँह दुपट्टेसे ढँक लिया। शोकसे उसका हृदय भर आया, नेत्रोंमें आँसू आगये और बहुत समय तक उसके मुहसे एक शब्द भी न निकला। निदान भर्राई हुई आवाजसे उसने कहा,–“भगवन् ! क्या आप इस दासके साथ कुछ वार्तालाप करनेकी कृपा न करेंगे ? और क्या यह भी न बतलावेंगे कि आप मुझे अपना शिष्य क्यों नहीं बनाते हैं ?”

बुद्धदेवने ध्यान विसर्जन करके कहा:–“ तेजस्वी राजकुमार, बाह्यदृष्टिकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो जानेसे ही कोई दीक्षाका पात्र नहीं हो जाता। मैंने तुमसे स्त्रियोंके तथा दूसरे आनन्ददायक सुखोपभोगोंके त्याग करनेके लिए नहीं कहा था। पूर्वजन्मानुसार जिस परीक्षामें–जिस कसौटीमें तुम्हें उतीर्ण होना है, वह तुम्हारे स्वभावकी ही है और उसमें तुम निष्फल–अनुत्तीर्ण हो गये हो। अपने राजमहलको तुम फिर लौट जाओ और सद्गुणी सदाचारी जीवन व्यतीत करते हुए शान्ति सुखका अनुभव करो। शिष्यका जीवन धारण करनेकी अभी तुममें योग्यता नहीं है।”

राजकुमारके मुखपर कुछ अकचकाहटके चिह्न दिखने लगे। उसने करुणस्वरसे कहा;–‘जिन प्रसंगोंमें मुझे निष्फलता हुई है—मैं उत्तीर्ण नहीं हुआ हूँ; कृपा करके क्या आप उन्हें बतलावेंगे ? यद्यपि उन प्रसंगोंके सुननेसे मुझे लज्जित होना पड़ेगा, तो भी उनके सुननेकी मुझे तीव्र उत्कंठा है।”

भगवान् बुद्धदेवकी दिव्यध्वनि हुई:—“सुनो, मैं उन प्रसंगोंका वर्णन करता हूँ। तुम्हारी प्रथम परीक्षा लोकनिन्दाकी सहनशक्ति है। राजकुमार, एक बार तुम्हारे पिताके दरबारमें तुमपर एक ऐसा अपराध लगाया गया था, जो वास्तवमें झूठा था। उसका तुम्हें स्मरण होगा। वास्तविक बात क्या है, इस बातका ज्ञान अन्तमें लोगोंको हो हीं जाता, परंतु तुमसे इतना धैर्य नहीं रक्खा गया। कर्मवशात् मानभंग होनेका जो उक्त प्रसंग तुमपर आ पड़ा था, उसे तुम्हें सहन करना चाहिए था; परन्तु दोषमुक्त होनेके लिए और अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिए तुम व्याकुल हो गये और इसके लिए तुमने शस्त्र तक हाथमें ले लिया। इस तरह इस प्रथम परीक्षामें तुम पास नहीं हुए।”

चर होती है, वहाँ हृदय और नेत्रोंको आनन्दित करनेवाली सुनहरी रंगकी किरणें कभी देखी हैं ? बाह्यबुद्धि इसी प्रकारकी है।"

राजकुमारकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने बुद्धदेवको साष्टांग प्रणिपात करके भर्राई हुई आवाजमें कहा–"प्रभो ! अपने समीपसे मुझे दूर मत करो। आपका शिष्य बननेके लिए मुझे एक बार फिर प्रयत्न करने दो। आपके शिष्य होनेकी योग्यता कैसे आ सकती है, यह अब मैंने भलीभाँति समझ लिया है।"

बुद्धदेवने कहा, "अच्छा जाओ, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हुई।" राजकुमार अपने साथियोंको लेकर उसी समय वहाँसे चला गया।

(३)

राजकुमार जैत्रसिंहने अपने राज्यमें पहुँचकर अपने पिताकी मृत्युवार्ता सुनी। राज्यका सारा कार्यभार उसके सिरपर आ पड़ा। न्यायनीतिसे प्रजाका पालन करनेके कारण थोड़े ही दिनोंमें वह न्यायी और प्रजाप्रिय राजा कहलाने लगा।

उसने पहले अपने मित्रके लिए और उससे मित्रता करनेकी इच्छा करनेवाले उपरिकथित नवीन पुरुषके लिए पास ही पास दो महल बनवा दिये और अपनी बहिष्कृता स्त्रीको भी बुलाकर फिर राजमहलमें दाखिल कर ली। इससे राजाकी बड़ी निन्दा होने लगी। उसके पिताके समयके जो वृद्ध सेवक थे, वे अप्रसन्न हो गये। घर घर इन्हीं बातोंकी चर्चा होने लगी। उसकी समुचित सुधारणाओंमें लोगोंको स्वेच्छाचारिताकी दुर्गन्धि आने लगी।

परन्तु इससे राजा विचलित न हुआ। उसे पुष्पशय्या और कंटकशय्या एक-ही सी भासित होने लगी। कंचन काच, महल स्मशान, धनी निर्धन और जीवन मरणमें उसकी समदृष्टि हो गई। उसने लोगोंकी निन्दा–स्तुतिकी ओर आँख उठाकर झाँका भी नहीं। वह अपने कर्तव्यपथ पर बराबर आरूढ़ रहा।

राजाका एक छोटा भाई था। वह अपने बड़े भाईकी उपर्युक्त परणतिसे अप्रसन्न होकर शत्रु बन गया। उसने राजाके विरुद्ध एक बड़े भारी षड्यंत्रकी रचना की, जिसका कि उद्देश्य राज्याधिकारके परिवर्तन कर देनेका था।

एक दिन राजा जैत्रसिंहको किसीने आकर खबर दी कि तुम्हारे वध करनेका गुप्त यत्न किया जा रहा है; परन्तु इससे राजा जरा भी भयभीत न हुआ। उसे अपनी रक्षा करनेकी जरा भी चिन्ता न हुई–अपने प्राण जानेकी शंकासे वह व्याकुल नहीं हुआ। उसने एक दिन अपने एकान्त स्थानमें देखा कि एक अपरिचित पुरुषने मेरा काम तमाम करनेके लिए तलवार उठाई है! वह तलवार

उसकी गर्दन पर पड़ना ही चाहती थी कि उसके कई मित्रोंने वहाँ पहुँचकर उसे बीचहीमें रोक लिया और मारनेवालेको उसी समय कैद कर लिया। मारनेवाला 'आराद' नामका एक क्षत्रिय था। राजाने पूछा—"आराद, तुम किस कारणसे मेरा खून करना चाहते थे?"

उसने उत्तर दिया–"इसलिए कि तू राज्यका सत्यनाश करनेवाला है। तेरा वर्त्ताव यहाँके पूर्व राजाओंसे बिलकुल उलटा है। तू जितनी सुधारणायें करता है, वे सब परिणाममें राज्यका नाश करनेवाली हैं।"

जैत्रसिंहने विचार किया कि अपराधी अज्ञानी जान पड़ता है, इसलिए इसे छोड़ देना चाहिए और अपने सेवकोंसे कहा–"यद्यपि इस मनुष्यने मेरे वध करनेका प्रयत्न किया था; परन्तु इसका उद्देश्य अच्छा है। इस लिए इसको बंधमुक्त कर दो और मेरे पास इसे अकेला छोड़कर तुम सब बाहर चले जाओ।"

सेवक आश्चर्यचकित होकर बाहर चले गये। राजाके साहसके विषयमें उन्हें उस समय कुछ भय हुआ। आराद लापरवाहीसे राजाकी ओर देखने लगा; परन्तु राजाने उसकी मुखमुद्रा पर कुछ भी ध्यान न दिया। आरादने देखा कि राजाके मुखपर दया, धिक्कार अथवा विजयकी छाया भी नहीं है। वह भगवान् बुद्धदेवके इस उपदेशके अनुसार कि—"सन्त पुरुष अपराधकी खोज करनेकी अपेक्षा अपराध क्यों हुआ है, इसके खोज निकालनेमें अधिक परिश्रम करते हैं" पूर्व कर्मोंके निरीक्षण करनेका प्रयत्न करता था। वह उन कर्मोंकी मीमांसा कर रहा था, जिनके कारण आरादने उसके मारनेका प्रयत्न किया था और वह स्वयं मरता मरता बच गया था। एकाएक उसकी मुद्रा पलट गई। वह अपने दिव्य चक्षुओंसे इस प्रकार देखने लगा, मानो गुरुदेवने ही उसके अन्तःकरणके कपाट खोल दिये हैं। वस्तुका रहस्य उसकी समझमें आने लगा। उस क्षत्रियके पूर्व कर्म उसकी दृष्टिके सन्मुख नृत्य करने लगे।

उसे ज्ञात हुआ कि विद्युल्लताके समान 'आराद' का स्थूलरूप क्षण क्षणमें परिणमन कर रहा है। अज्ञानसे और उसके कारण बाँधे हुए पापकर्मोंसे प्राणियोंको जो जो कष्ट सहन करने पड़ते हैं, उनका साक्षात् स्वरूप उस समय उसके ज्ञानका विषय हो गया! थोड़ी देरमें जैसे कोई स्वप्नसे जागृत होता है, उसी प्रकारसे राजाने सचेत होकर उस क्षत्रियकुमारसे कहाः—"भाई, तुम्हारे सम्बन्धमें मैं इतना ही जानता हूँ कि तुम मेरे बन्धु हो—मेरे और तुम्हारे स्वरूपमें

कुछ अन्तर नहीं है। हम तुम दोनों ही एक पथके पथिक हैं। आओ, हम तुम हृदय मिलाकर मिल लें और इस मार्गको शीघ्र तय करनेका प्रयत्न करें।"

बहुत समय व्यतीत हुआ देखकर राजाके अंगरक्षकोंको भय हुआ। उन्होंने भीतर जाकर देखा, तो आराद जैत्रसिंहके कंधेपर सिर रक्खे हुए रो रहा है और जैत्रसिंह एक अपूर्व आध्यात्मिक तेजसे दीप्तिमान् हो रहा है!

* * * *

भगवान् बुद्धदेव पूर्वकथित उपवनमें ही विराजमान् हैं। प्रभातका समय है। सूर्यदेव धीरे धीरे ऊपर आ रहे हैं। किसी मनुष्यके पैरोंकी आहट सुनाई पड़ने लगी। भगवान् बुद्धदेवने नेत्र खोले। राजा जैत्रसिंह नमस्कार करके सन्मुख खड़ा हो गया।

इस समय राजाके साथ कोई भी पुरुष न था। उसने भिक्षुकका वेष धारण कर रक्खा था। उसकी मुखमुद्रा पर एक अपूर्व शान्ति विराजमान थी। बुद्धभगवानने उसे आशीर्वाद दिया और कहा–"बेटा, तुम परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके। अब प्रसन्नताके साथ दीक्षा ग्रहण करके अपना और अगणित संसारदुःखमग्न प्राणियोंका कल्याण करो।"

इसके पश्चात् बुद्धदेवने उसे मंत्रोपदेश दिया। इस समय सुगन्धित मन्द पवन चली रही थी। चारों दिशाओंमें दिव्य शान्ति प्रसर रही थी और प्रभातकालकी रमणीयता अलौकिक भासित होती थी।

समाप्त।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज।

हमारे यहाँसे इस नामकी एक ग्रन्थमाला प्रकाशित होती है। हिन्दी-संसारमें यह अपने ढंगकी अद्वितीय है। अभी इसमें जितने ग्रन्थ निकले हैं वे भाव, भाषा, छपाई, सौन्दर्य आदि सभी दृष्टियोंसे बेजोड़ हैं। प्रायः सभी साहित्य-सेवियोंने उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं। स्थायी ग्राहक होनेकी 'प्रवेश फी' आठ आने हैं। अभी तक नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं:—

१-२ स्वाधीनता—जान स्टुअर्ट मिलके 'लिबर्टी' नामक ग्रन्थका अनुवाद। अनुवादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। इसके प्रारंभमें मूल लेखकका लगभग ६० पृष्ठका जीवनचरित भी लगा दिया है। मूल्य दो रु०।

३ प्रतिभा— प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत अविनाशचन्द्रदास एम. ए., बी.एल.के 'कुमारी' नामक शिक्षाप्रद और भावपूर्ण उपन्यासका अनुवाद। मूल्य एक रु०।

४ फूलोंका गुच्छा—उच्च श्रेणीकी चुनी हुई ११ गल्पें। मू० ॥≈)

५. आँखकी किरकिरी—डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ टागोरके 'चौखेर बालि' नामक प्रसिद्ध उपन्यासका अनुवाद। मूल्य डेढ़ रु०।

६ चौबेका चिट्ठा—बंगसाहित्यसम्राट् स्वर्गीय बंकिम बाबूके ज्ञान-विज्ञान-देशभक्तिपूर्ण हास्य-ग्रन्थका अनुवाद। मूल्य बारह आने।

७ मितव्ययता— सेमुएल स्माइल्स साहबके 'थिरिफ्ट' नामक ग्रंथके आधारसे लिखित। मूल्य पन्द्रह आने।

८ स्वदेश—डा० सर रवीन्द्रनाथ टागोरके चुने हुए स्वदेशसम्बन्धी निबंधोंका अनुवाद। मूल्य दश आने।

९ चरित्र-गठन और मनोबल। राल्फ वाल्डो ट्राईनके 'कैरेक्टर बिल्डिंग थाट पावर' का अनुवाद। मू० तीन आने।

१० आत्मोद्धार—प्रसिद्ध हबशी विद्वान् बुकर टी० वाशिंगटनका आत्म-चरित। स्वावलम्बनकी अपूर्व शिक्षा देनेवाला ग्रन्थ। मूल्य सवा रु०।

११ शांतिकुटीर—श्रीयुत अविनाश बाबूके 'पलाशवन' नामक शिक्षाप्रद, और धार्मिक गार्हस्थ्य उपन्यासका अनुवाद। मूल्य चौदह आने।

१२ सफलता और उसकी साधनाके उपाय—कई अँगरेजी पुस्तकोंके आधारसे लिखित शिक्षाप्रद ग्रन्थ । मू० बारह आने ।

१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर—अतिशय हृदयभेदी, करुणरसपूर्ण और शिक्षाप्रद उपन्यास । मूल्य बारह आने ।

१४ स्वावलम्बन—सेमुएल स्माइल्सके 'सेल्फ-हेल्प' नामक ग्रन्थके आधारसे लिखा हुआ स्वतंत्रके समान उत्तम ग्रन्थ । मूल्य सवा रुपया ।

१५ उपवास-चिकित्सा—उपवास या लंघनसे तमाम रोगोंके नष्ट करनेके उपाय बतलाये गये हैं । मूल्य बारह आने ।

१६ सूमके घर धूम—सभ्य हास्यरसपूर्ण प्रहसन । मूल्य तीन आने ।

१७ दुर्गादास—प्रसिद्ध स्वामिभक्त वीर दुर्गादासके ऐतिहासिक चरित्रको लेकर इस नाटककी रचना की गई है । मूल्य एक रुपया ।

१८ बंकिम-निबंधावली—स्वर्गीय बंकिम बाबूके चुने हुए निबंधोंका अनुवाद । मूल्य चौदह आने ।

१९ छत्रसाल—बुंदेलखंडकेशरी महाराज छत्रसालके ऐतिहासिक चरित्रके आधार पर लिखा हुआ देशभक्तिपूर्ण उपन्यास । मूल्य डेढ़ रुपया ।

२० प्रायश्चित्त—बेलजियमके सर्वश्रेष्ठ कवि मेटरलिंकके एक भावपूर्ण नाटकका हिन्दी अनुवाद । मूल्य चार आने ।

२१ अब्राहमलिंकन-अमेरिकाके प्रसिद्ध सभापतिका जीवनचरित।मू०।।।=)

२२ मेवाड-पतन और २३ शाहजहाँ—ये दोनों नाटक बंगलेखक द्विजेन्द्रलाल रायके अपूर्व नाटकोंके अनुवाद हैं । दोनों ऐतिहासिक हैं । मूल्य बारह और चौदह आने ।

२४ मानवजीवन—अंगरेजी, गुजराती, बंगला और मराठीकी कई सदाचार सम्बन्धी पुस्तकोंके आधारसे लिखा हुआ उत्कृष्ट ग्रन्थ । मूल्य १।=)

२५ उसपार—द्विजेन्द्रलाल रायके एक अतिशय हृदयद्रावक और शिक्षाप्रद सामाजिक नाटकका अनुवाद । मूल्य एक रुपया ।

२६ ताराबाई—यह भी द्विजेन्द्रबाबूके एक नाटकका अनुवाद है । यह पद्यमय है । हिन्दीमें यही सबसे पहला खड़ी बोलीका पद्य नाटक है । मूल्य १)

२७ देशदर्शन—लेखक श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दन सिंह बी०ए०, एफ. आर. ए. एस. । इसमें इस देशकी शोचनीय अवस्थाका रोमाञ्चकारी दर्शन कराया है । अँगरेजीके पचास ग्रन्थोंके आधारसे इसकी रचना हुई है । मूल्य तीन रु० ।

२८ हृदयकी परख—हिन्दीमें स्वतंत्र और भावपूर्ण उपन्यास। इसके लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री हैं। इस पुस्तकमें हमने एक नामी चित्रकारसे पाँच नवीन चित्र बनवाकर छपवाये हैं। जिससे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है। मूल्य चौदह आने।

२९ नवनिधि—इस ग्रन्थको उर्दूके प्रसिद्ध गल्पलेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने स्वयं अपनी कलमसे हिन्दीमें लिखा है। इसमें एकसे एक बढ़कर सुन्दर और भावपूर्ण नौ गल्पें हैं। इनके जोड़की गल्पें आपने शायद ही कभी पढ़ी होंगी। मूल्य चौदह आने।

३० नूरजहाँ—स्वर्गीय द्विजेन्द्रलालरायके प्रसिद्ध नाटकका अनुवाद। इसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। शाहजहाँ और नूरजहाँ उनके सर्वश्रेष्ठ नाटक गिने जाते हैं। मूल्य एक रु०।

३१ आयर्लैण्डका इतिहास—प्रसिद्ध राष्ट्रीय ग्रन्थ। मूल्य १॥।≈)

३२ शिक्षा—डा० रवीन्द्रनाथ टागोरके शिक्षासम्बन्धी पाँच निबन्धोंका अनुवाद। मू० ॥≈)

३३ भीष्म—स्वर्गीय द्विजेन्द्रलालरायके पौराणिक नाटकका अनुवाद। मू० १)

नोट—उपर्युक्त पुस्तकोंकी जो कीमत छपी है वह सादी जिल्दकी है। कपड़ेकी जिल्दवाली पुस्तकोंकी कीमत चार छह आने ज्यादे है।

हमारी अन्यान्य पुस्तकें

१ व्यापार-शिक्षा—व्यापारसम्बन्धी प्रारंभिक पुस्तक। मू० दस आने।

२ युवाओंको उपदेश—विलियम कावेटके "एडवाईस टू यंगमैन" के आधारसे लिखित। मूल्य बारह आने।

३ कनकरेखा—प्रसिद्ध गल्प लेखक श्रीयुत केशवचन्द्र गुप्त बी. ए. बी. एल. की बंगला गल्पोंका अनुवाद। मू० बारह आने।

४ शांति-वैभव—'मैजेस्टी आफ कामनेस'का अनुवाद। मूल्य पाँच आने।

५ लन्दनके पत्र—विलायतसे एक देशभक्त भारतवासीकी भेजी हुई देशभक्तिपूर्ण चिट्ठियोंका संग्रह। मू० तीन आने।

६ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा—मू० तीन आने।

७ **ब्याहीबहू**—जो लड़कियाँ ससुराल जानेवाली हैं या जा चुकी हैं, उनके लिए बहुत ही उपयोगी । मू० तीन आने ।

८ **पिताके उपदेश**—एक सुशिक्षित पिताके अपने विद्यार्थी पुत्रके नाम भेजे हुए शिक्षाप्रद पत्रोंका संग्रह । मू० दो आने ।

९ **सन्तान-कल्पद्रुम**—इसमें वीर, विद्वान् और सद्गुणी सन्तान उत्पन्न करनेके विषयमें वैज्ञानिक पद्धतिसे विचार किया गया है । मू० बारह आने ।

१० **मणिभद्र**—एक जैन कथानकके आधारपर लिखा हुआ सुन्दर भावपूर्ण उपन्यास । मू० दश आने ।

११ **कोलम्बस**—नई दुनियाका पता लगानेवाले प्रसिद्ध उद्योगी और साहसी नाविकका जीवनचरित । मू० बारह आने ।

१२ **ठोक पीटकर वैद्यराज**—मौलियरके फ्रेंच नाटकका सुन्दर हिन्दी रूपान्तर । हँसते हँसते आप लोट-पोट हो जायँगे । मू० पांच आने ।

१३ **बूढेका ब्याह**—खड़ी बोलीका सचित्र काव्य । मू० छह आने ।

१४ **दियातले अँधेरा** (गल्प)—मू० डेढ आना ।

१५ **भाग्यचक्र** (गल्प)—मू० एक आना ।

१६ **विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य**—मू० एक आना ।

१७ **सदाचारी बालक**—एक शिक्षाप्रद कहानी । मू० दो आने ।

१८ **बच्चोंके सुधारनेका उपाय**—मू० आठ आने ।

१९ **वीरोंकी कहानियाँ**—मू० छह आने ।

२० **गिरना उठना और अपने पैरों खड़े होना** अथवा **अस्तोदय और स्वावलम्बन**—स्वावलम्बनकी शिक्षा देनेवाला एक उत्कृष्ट निबन्ध । मू० १=)

२१ **अंजना-पवनंजय** (खड़ी बोलीका काव्य)—मू० ≡)

२२ **योग-चिकित्सा**—योगकी क्रियाओंसे तमाम रोगोंके अच्छे करनेके और निरोगी रहनेके उपाय । मू० =)

मिलनेका पता:—

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई ।